कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 15, Issue 60
Oct.-Dec., 2018

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record

सम्पादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १५ - अंक ६०, अक्टूबर - दिसम्बर २०१८

अंतहीन

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

अंत -
एक विराट विश्वदर्शन का
अंत -
दिक्काली दूरियों का
अंत -
अहं के पिरामिडों का
अंत -
भूगोल के इतिहास का
अंत -
इतिहास के इतिहास का
अंत -
एटमी विनाश का
अंत -
किसी अनंत का
अंत -
अंत के अंत का

सोचता हूँ -
क्या सचमुच कोई अंत होता है?

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
सम्पादकीय		२
गंगा	वसुधा पाण्डेय	५
सदी के मुसाफ़िर का आख़िरी सफ़र	राजेश बादल	८
महाकवि नीरज	सुशील शर्मा	१५
हिन्दी और हम	उमेश मेहता	१६
दिल में बसाओ	ललिता शर्मा	१८
हिन्दी के शत्रु :		
सत्ता, सम्पत्ति और संस्थाएँ	डॉ. प्रभाकर माचवे	२०
भागभरी	कमल कपूर	२४
क्या ज़रूरत है सहारों की	डॉ. अलका गोयल	२६
कुछ सपनों के मर जाने से,		
जीव नहीं मरा करता है	संदीप सृजन	२७
छुट्टी	ओम प्रकाश मिश्र	२९
आज फिर से	डॉ. हरिवंश राय बच्चन	३३
ख़तरे में है भारत की सांस्कृतिक		
अखण्डता और विरासत	डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'	३४
हिन्दी पर मुक्तक	मनोज कुमार शुक्ल 'मनोज'	३६
कोख	डॉ. सुमति दुबे	३७
दो पैर	सुमित्रा केजरीवाल	४१
नीरज के काव्य में मानववाद	गिरिराज शरण अग्रवाल	४२
दिल कोमल होता है	ओम प्रकाश विश्नोई 'सुधाकर'	४४
अंतहीन	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'	१ अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com, kavitakosh.org/vasudhapatrika

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

सम्पादकीय

कारवाँ गुज़र गया, गुबार देखते रहे – नीरज जी का पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं रहा, पर वो अपने काव्य द्वारा सदैव ही हमारे मध्य में रहेंगे. हमारी हृदय-तंत्रियों को वे अपने गीतों से सदा ही झंकृत करते रहेंगे, इसमें संदेह की तनिक भी गुंजाइश नहीं है. भारत में उनसे मिलने, उनको सुनने का सौभाग्य तो प्राप्त हुआ ही था, पर मेरे आनंद का तब ठिकाना न रहा जब अपने इस कैनेडा आवास में भी दो बार टोरांटो में उनके सान्निद्ध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ. और तो और यह मेरी बहुत बड़ी खुश-किस्मती है कि सन् २०१२ में उन्होंने मेरी २ पुस्तकें "आज का समाज" व "चिंतन के धागों में कैकेयी – सदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण" का लोकार्पण भी किया.

ईश्वर से प्रार्थना है कि वे डॉ. गोपालदास नीरज जी की आत्मा को शांति प्रदान करें एवं हम सब जीवन-पर्यंत उनके काव्य का जहाँ एक ओर आनंद उठाएँ, रसास्वादन करें, वहीं उससे शिक्षा भी प्राप्त करते रहें. महाकवि, गीतकार, पद्म भूषण विभूषित नीरज जी को ठाकुर साहब व मेरी ओर से एवं समस्त वसुधा परिवार की ओर से सादर विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ.

"हिन्दी सेंटर" जिसकी संरक्षिका होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है, के संस्थापक एवं मौडलिंगुआ लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक श्री रवि कुमार एवं उनके सहयोगियों ने भाषा से जुड़े लोगों के लिए एक रुब्रिक विकसित किया है जो लेखन की अशुद्धियों को कम करने में सहायक सिद्ध होगा. इस रुब्रिक का यदि उचित ढंग से प्रयोग किया जाए तो किसी आलेख के लिखने से लेकर उसके सम्पादन में जो समय लगता है उसे कम से कम आधा किया जा सकता है. साथ ही प्रोजेक्ट प्रबंधन में भी तेजी से सुधार लाया जा सकता है. परिणामत: समय की बचत के साथ ही साथ हम अपनी विधा में विकास लाते हैं और अंतत: अपनी आमदनी भी दुगुनी कर सकते हैं. विस्तृत जानकारी हेतु विडियो की ये कड़ियाँ अत्यंत लाभदायी सिद्ध होंगी - https://youtu.be/MIk_VyRNzZc एवं https://youtu.be/1xXrk4xCWOA

वसुधा के परम हितैषी, पूर्व सांसद, राजभाषा की संसदीय समिति के पूर्व उपाध्यक्ष तथा आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी के अध्यक्ष पद्मभूषण प्रिय डॉ. लक्ष्मी प्रासाद यार्लगड्डा जी ने, देश की सर्वाधिक प्राचीन हिन्दी संस्था, जिसकी स्थापना महात्मा गाँधी जी के द्वारा वर्ष १९१८ में चेन्नै में हुई थी, के शतमानोत्सव वर्ष २०१८ के सर्वप्रथम कार्यक्रम "शतमानोत्सव व्याख्यान श्रृंखला" का शुभारम्भ करते हुए अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि सभा के द्वारा दिए गए इस महत्वपूर्ण अवसर के लिए वे बहुत गौरव अनुभव करते हैं, क्योंकि उन्होंने बचपन में ही सभा की प्रारम्भिक परीक्षाएँ पास की हैं. हिन्दी के विकास के लिए सभा के प्रचारकों और कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए उन्हें बधाई दी और उनका आह्वान करते हुए जयशंकर प्रसाद की कविता 'बढे चलो! बढे चलो' का नारा दिया और हिन्दी को राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए आवश्यक बताया. इस अवसर पर उन्होंने "राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और हिन्दी" विषय पर अपना विद्वत्तापूर्ण प्रथम व्याख्यान भी दिया.

प्रतिभाशाली हिन्दी संस्कृति कर्मी, कवि, उद्घोषक, पत्रकार, प्रकाशक श्री उमेश मेहता भारत से कुछ समय हेतु टोराण्टो पधारे और उन्होंने न केवल अपना मूल्यवान् समय ठाकुर साहब व हमारे साथ व्यतीत कर अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चाएँ कीं, वरन् साथ ही अपनी अमूल्य पुस्तकें उपहारस्वरूप दे हमें और भी कृतार्थ किया. उनके स्नेहिल सान्निध्य, पुस्तकें एवं उनकी विवेकपूर्ण मीमांसा, समालोचना हेतु उनका हार्दिक धन्यवाद एवं आभार.

संस्कृत और हिन्दी की विदुषी, मृदु-भाषिणी, श्रीमती ललिला शर्मा जो भारत सरकार के महानगर टेलीफोन में हिन्दी विभाग के सहायक निदेशक पद से सेवा-निवृत्त हुई हैं, आजकल टोराण्टो आई हुई हैं और मेरा यह सौभाग्य है कि अपने इस आवास-काल में वे निरन्तर मेरे सम्पर्क में हैं.

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मेरे उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" जिसे म.प्र. साहित्य अकादमी के अखिल भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार से सम्मनित किया गया है, के चतुर्थ संस्करण का लोकार्पण गुरु-पूर्णिमा के पावन-पुनीत दिवस पर मेरी आदरणीय एवं प्रिय अम्माँ, कर्णाटक की अम्माँ, माँ मातेश्वरी देवी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ.

अभी-अभी ज्ञात हुआ है कि, ओजस्वी कवि, पत्रकार, प्रखर वक्ता, नेता, प्रधानमंत्री, जननायक, माँ भारती के गुणी सपूत, ओजस्वी, तेजस्वी, यशस्वी व्यक्तित्व के धनी, युग-पुरुष आदरणीय एवं प्रिय भारत-रत्न अटल बिहारी बाजपेयी जी, हमारे बीच नहीं रहे. कुछ समय से अस्वस्थ चलते उनके शरीर ने पूर्णत: विराम हेतु अनंत शांति का मार्ग अपना लिया है. जहाँ एक ओर उनकी शांत हुई मौखिक वाणी अब केवल यंत्रों के माध्यम से गुंजित रहकर हमें आनंदित करती रहेगी वहीं उनकी लेखनी द्वारा रचित साहित्य सदा-सर्वदा हमारा एवं आगे आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करता रहेगा. आज स्मृति में उमड़-घुमड़ रहा है स्वयं की बचकानी हरक़तों वाला बचपन और अटल जी की स्नेहिल शालीनता की स्मृतियाँ. दृश्य-पटल पर उभर आया बचपन का एक दृश्य - जब मैं छोटी-सी थी, माननीय श्री लाडली मोहन निगम, जिन्हें मैं दादा के सम्बोधन से सम्बोधित करती थी, के आवास पर, जो हमारे घर के बिल्कुल सामने ही था, उनसे छुपाकर, क्योंकि हम सब बच्चे जिसमें लाड़ली दादा के छोटे भाई-बहन भी सम्मिलित थे, लाड़ली दादा से डरते थे, अटल जी के कुर्ते का निचला छोर पकड़ उसे खींच-खींच कर मैं उनसे अपनी बात मनवा ही लेती थी. और वे भी खेल-खेल में हमारी बातों को सहर्ष स्वीकार कर लेते थे. बचपन के अपने उन्हीं प्रिय सम्वेदनशील, सद्भावी अटल जी को अपनी ओर से, ठाकुर साहब की ओर से एवं समस्त वसुधा परिवार की ओर से, उन्हीं की कविता, सादर विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में अर्पित करते हुए, उनकी "आँधियों में जलाये हैं बुझते दीये" पंक्ति से प्रेरणा ले, आगामी आने वाली दीपावली पर उनके संदेशो का नव-दीप जला हम उनके पावन-पुनीत साहसी पथ पर अग्रसर होते रहें, दीपावली की इन्हीं शुभकामनाओं सहित,

सस्नेह, स्नेह ठाकुर

"ठन गई, ठन गई, मौत से ठन गई
जूझने का मेरा कोई इरादा न था
मोड़ पर मिलेंगे इसका वादा न था
रास्ता रोक कर वह खड़ी हो गई
यूँ लगा ज़िंदगी से बड़ी हो गई
मौत की उम्र क्या दो पल भी नहीं
ज़िंदगी सिलसिला आजकल की नहीं
मैं जी भर जिया मैं मन से मरुँ
लौट कर आऊँगा मौत से क्यूँ डरूँ
तू दबे पाँव चोरी-छिपे से न आ
सामने वार कर फिर मुझे आज़माँ
मौत से बेख़बर ज़िंदगी का सफ़र

शाम हर सुरमई रात वंशी का स्वर
बात ऐसी नहीं कि कोई गम ही नहीं
दर्द अपने पराए कुछ कम भी नहीं
प्यार इतना परायों से मुझको मिला
न अपनों से बाकी है कोई गिला
हर चुनौती से दो हाथ मैंने किये
आँधियों में जलाये हैं बुझते दीये
आज झकझोरता तेज तूफ़ान है
नाव भँवरों की बाँहों में मेहमान है
पार पाने का कायम मगर हौसला
देख तूफ़ान का तेवर तेरी तन गई
मौत से ठन गई, मौत से ठन गई."

नीरज जी के दो यादगार चित्र - "आज का समाज" व "चिंतन के धागों में कैकेयी – सदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण" का लोकार्पण -

गंगा

वसुधा पाण्डेय
(बी.ए. तृतीय वर्ष, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय)

पुकारती है गंगा, सँवारती है गंगा
इस पावन वसुंधरा की आरती है गंगा।

गंगा की कहानी सुनो
गंगा की ज़ुबानी सुनो -
गोमुख से मैं बहती हूँ,
हिमालय की मैं बेटी हूँ,
ऋषिकेश, हरिद्वार, बनारस की प्रिय सहेली हूँ।
तुमको क्या बतलाऊँ मैं?
कब से चलती आई हूँ मैं,
भोलेनाथ की जटा में समाई हूँ मैं।
दक्षिण सागर के भरत पुत्र मेरे दर्शन को आये हैं,
सगर-पुत्रों को श्राप से भगीरथी ने उबारा है,
माता कौसल्या के आशीर्वाद में भी मेरा ही सहारा है -
माँ कौसल्या ने कहा सीता से,
"जब लगि गंग जमुन जल धारा,
अचल रहे यही वाक् तुम्हारा।"
पुकारती है गंगा, सँवारती है गंगा
इस पावन वसुंधरा की आरती है गंगा।

पुकारती है गंगा....
हड़प्पा तो रहा नहीं, पर मैं आज भी बहती हूँ;
युग-युग से बहती आई हूँ -
मौर्यों को मैंने देखा है,
अशोक, चाणक्य और चंद्रगुप्त के शौर्यों को मैंने देखा है,
मुगलों से लेकर अँग्रेजों तक के जुल्मों को देखा है।
अपने पुत्रों को फाँसी पर चढ़ते मैंने देखा है,
उनके लहू को मैंने अपने अंचल में समेटा है।
इतिहास को बनते देखा है,
इतिहास को मिटते देखा है।
कर कठोर हृदय मैं फिर भी बहती ही चली आई हूँ -
चलते, चलते, चलते, चलते,

सदी इक्कीस में चली आई हूँ,
पुकारती है गंगा, सँवारती है गंगा,
इस पावन वसुंधरा की आरती है गंगा।

अब गंगा की कहानी सुनो,
वसुधा की ज़ुबानी सुनो....
मेरी गंगा मैया अब भी गोमुख से ही बहती है,
अन्न, जल और वसन,
सब कुछ वो हमें देती है,
बलिया, पटना या हो बक्सर,
बंगाल में वह बहती है,
हरिद्वार, ऋषिकेश बिहार में आज भी पूजी जाती है।
पर क्या वह आज भी वैसी है, जैसी बुद्ध ने देखी थी?
हमारी गंगा मैया जो कल-कल छल-छल बहती थी,
मैली होकर सूख चुकी है,
मैया ने तो हमको बस अमृत-जल पिलाया है,
हमने मैया को कूड़े-कचरे का ढ़ेर बनाया है।

कहाँ गई वह गंगा, काशी में जो बहती थी?
संगम की वह निर्मल गंगा, जिसे राम ने छुआ था,
कबीर, रैदास और रामानन्द का यश जहाँ पर फैला था,
गोमुख से गंगा-सागर तक, शष्य-श्यामला धरती की माता है गंगा।
रुठ गई है माँ हमसे, हमें छोड़ कर जा रही है,
सोचो एक बार तो सोचो, क्या माँ के बिन रह पाओगे?
गंगा अकेली नहीं मिटेगी,
संस्कृति भी मिट जाएगी,
कला, भूगोल, साहित्य, इतिहास, सब कुछ ही खो जाएगा।
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई के रगों का रंग उड़ जाएगा।
जब गंगा ही मिट जाएगी,
राम-कृष्ण मिट जाएँगे,
अशोक विस्मृत हो जाएँगे,
बिस्मिल्ला की शहनाई की गूँज गुम हो जाएगी,
मंगल पांडे की शौर्य गाथाएँ, मिट्टी में मिल जाएँगी....
लक्ष्मी बाई न रह जाएँगी....
जननी जन्मभूमि को सँवारती है गंगा।

गंगा कह रही है -
"मैं जा रही हूँ,
मैं सिर्फ़ 'मैं' नहीं,
मैं इतिहास हूँ, मैं भूगोल हूँ, मैं संस्कृति हूँ, मैं संस्कार हूँ
मैं जा रही हूँ।
तुमने मेरी बहुत सेवा की, पूजा की,
मुझे माँ कहा,
पर अब तुम बड़े हो गए हो,
अब शायद माँ भार लग रही है....
माँ जा रही है।

मैं तुलसीदास का भक्ति-प्रवाह लेकर जा रही हूँ,
मैं वीरगाथाएँ लेकर जा रही हूँ,
मैं जन-जन की आरती लेकर जा रही हूँ,
मैं पूर्णिमा का दीपक लेकर जा रही हूँ,
मेरे तट के आकाश द्वीप में अब मत ढूँढना अपने पुरखों का रास्ता
मैं आजीविका लेकर जा रही हूँ,
मैं जाना नहीं चाहती,
पर तुमने मजबूर किया है,
अत: मैं जा रही हूँ,
मैं इतिहास लेकर जा रही हूँ।
मैं भारत लेकर जा रही हूँ।"

इतिहास के पन्ने फट जाएँगे,
भूगोल में लपटें छा जाएँगी,
एक भूकम्प आएगा,
क्योंकि,
कराह रही है गंगा,
जा रही है गंगा।

सदी के मुसाफ़िर का आख़िरी सफ़र

(नीरज जी को श्रद्धांजलि के रूप में अर्पित – सम्पादक)

राजेश बादल

क़रीब सौ साल पहले का हिंदुस्तान. उत्तरप्रदेश में अलीगढ़ और उसके आसपास अँगरेजो ! भारत छोड़ो के नारे सुनाई दे रहे थे. चार जनवरी उन्नीस सौ पच्चीस को अलीगढ़ के पड़ोसी जिले इटावा के पुरावली गाँव में गोपालदास सक्सेना ने पहली बार दुनिया को देखा. छह बरस के थे तो पिता हमेशा के लिए छोड़कर चले गए. तब से छियानवे साल की उमर तक गीतों के राजकुमार को अफसोस रहा कि पिता की एक तस्वीर तक नहीं थी. उस दौर में फोटो उतरवाना अमीरों का शौक़ था. पिता घर चलाते या तस्वीर उतरवाते. क्या आप उस दर्द को समझ सकते हैं कि दिल, दिमाग में पिता की छवि देखना चाहता है मगर वो इतनी धुँधली है कि कुछ दिखाई नहीं देता. गरीबी ने बचपन की हत्या कर दी थी. इटावा के बाद एटा में स्कूली पढ़ाई. बालक गोपालदास रोज कई किलोमीटर पैदल चलता. मिट्टी के घर में कई बार लालटेन की रौशनी भी नसीब न होती. फूफा जी दया कर के पाँच रुपए हर महीने भेजते और पूरे परिवार का उसमें पेट भर जाता. एक दो रुपए गोपालदास भी कमा लेता. बचपन के इस दर्द का अहसास हद पार कर गया तो भाव और सुर बन के जुबान से फूट पड़ा. अच्छा लिखते और मीठा गाते मास्टर जी कहते देखो सहगल गा रहा है लेकिन उन्हीं मास्टर जी ने एक बार सिर्फ एक नंबर से फेल कर दिया. गरीबी के कारण फीस माफ थी. फेल होने पर फीस भरनी पड़ती. घर से कहा गया पढ़ाई छोड़ दो. गोपालदास पहुँचे मास्टर जी के पास बोले नंबर बढ़ा दो वरना मेरी पढ़ाई छूट जाएगी फिर तो मास्टर जी ने गोपाल की आँखें खोल दीं, वो नसीहत दी जो आज तक याद है. मास्टर जी की झिड़की काम आई. हाई स्कूल फर्स्ट डिवीज़न में पास किया. उम्र सत्रह बरस. नौकरी दिल्ली में खाद्य विभाग में टाइपिस्ट, वेतन सड़सठ रुपए महीने. चालीस रुपए माँ को भेजते. बाकी में अपना खर्च. कई बार तो भूखे ही सोना पड़ता.

वैसे नीरज और गीतों का रिश्ता दस-ग्यारह बरस की उमर में ही बन गया था. इन गीतों की दिल को छू लेने वाली मीठी-मीठी धुनें फटाफट तैयार कर देना उनके लिए बाएँ हाथ का काम था. पर जब नवीं कक्षा में पढ़ते थे तो कविताओं और गीतों से लोगों को सम्मोहित करने लगे थे. घर की हालत अच्छी नहीं थी इसलिए पढाई के बाद ही नौकरी मजबूरी बन गई. लेकिन गोरी सरकार को नीरज के गीतों में बग़ावत की बू आने लगी. स्वाभिमानी नीरज ने नौकरी का जुआ उतार फेंका. इसके बाद सारे देश ने नीरज के गीतों की गंगा बहते देखी. हरिवंशराय बच्चन की कविताओं ने कविता के संस्कार डाले. नीरज का पहला कवि सम्मेलन था - एटा में. ये उन्नीस सौ इकतालीस की बात है. वो स्कूल में पढ़ते थे. अपने ज़माने के चोटी के साहित्यकार और कवि सोहनलाल द्विवेदी एक कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करने आए थे. उन्नीस सौ बयालीस में दिल्ली के पहाड़गंज में उन्हें दोबारा मौका मिला. पहली ही कविता पर इरशाद इरशाद के स्वर गूँजने लगे. वो कविता नीरज ने तीन बार सुनाई और इनाम मिला-पांच रुपये. कवि सम्मेलन की सदारत कर रहे थे अपने ज़माने के जाने माने शायर-जिगर मुरादाबादी. नीरज ने जिगर साहब के पैर छुए तो उन्होंने गले से लगा लिया. बोले "उमरदराज़ हो इस लड़के की. क्या पढता है जैसे नगमा गूँजता है. इसके बाद तो कवि सम्मेलनों में नीरज की धूम मच गई. उन दिनों उनका नाम था भावुक इटावी.

इसी दौर में उनका सम्पर्क क्रांतिकारियों से हुआ और वो आजादी के आन्दोलन में कूद पड़े. यमुना के बीहड़ों में क्रांतिकारियों के साथ हथियार चलाना सीखा. उन्नीस सौ बयालीस के अँग्रेजो ! भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान नीरज जेल में डाल दिए गए. जिला कलेक्टर ने धमकाया-माफी माँगोगे तो छोड़ दिए जाओगे. सात सौ नौजवानों में से साढ़े छह सौ ने माफी माँग ली. जिन्होंने माफी से इनकार किया, उनमें नीरज भी थे. ऐसे ही एक सम्मलेन में उन्हें लोकप्रिय शायर हफीज़ जालंधरी ने सुना. हफीज़ साहब अँगरेजी हुकूमत की नौकरी बजा रहे थे और सरकारी नीतियों का प्रचार करते थे. उन्हें लगा, नीरज का अंदाज़ लोगों तक संदेश पहुँचाने का ज़रिया बन जाएगा. उन्होंने नीरज को नौकरी का न्यौता भेजा. पगार एक सौ बीस रूपए तय की गई. पैसा तो अच्छा था, लेकिन वो नीरज का सोच नहीं खरीद पाए और नीरज ने नौकरी को लात मार दी. वो विद्रोह गा रहे थे. नीरज भागकर कानपुर आ गए. एक निजी कम्पनी में नौकरी मिली और साथ में पढाई की छूट भी. बारहवीं पास की. इसी दरम्यान देश आज़ाद हो गया. नीरज को सरकारी नौकरी मिल गई. मगर वो हैरान थे सरकारी महकमों में भ्रष्टाचार देखकर. आखिरकार १९५६ में उन्होंने ये नौकरी भी छोड़ दी. कानपुर में बिताए दिन नीरज की ज़िन्दगी का शानदार दौर है. कानपुर की याद में उन्होंने लिखा -

कानपुर आह ....आज तेरी याद आई
कुछ और मेरी रात हुई जाती है
आँख पहले भी बहुत रोई थी तेरे लिए
अब लगता है कि बरसात हुई जाती है
कानपुर आज देखे जो तू अपने बेटे को
अपने नीरज की जगह लाश उसकी पाएगा
सस्ता इतना यहाँ मैने खुद को बेचा है
मुझको मुफलिस भी खरीदे तो सहम जाएगा

नीरज के गीत इन दिनों पूरे देश में लोगों पर जादू कर रहे थे पर उनकी आमदनी से किसी तरह परिवार का पेट पल रहा था. पैसे की तंगी से जूझते 1954 में उन्होंने अपना कोहिनूर गीत रचा. यह गीत उन्होंने रेडियो पर सुनाया था. यह गीत था - ***कारवां गुज़र गया, गुबार देखते रहे.*** इस गीत ने धूम मचा दी. गली-गली में यह लोगों की ज़ुबान पर था. गीत फिल्मनिर्माता चंद्रशेखर को ऐसा भाया कि उन्होंने इसे केंद्र में में रखकर फिल्म नई उमर की नई फसल बना डाली. फिल्म के बाकी गीत भी जिर्ज की कलम से ही निकले थे. सारे के सारे हित और दिल को छूने वाले. इसी गीत ने उनकी नौकरी भी अलीगढ़ कॉलेज में लगाई. तभी से नीरज अलीगढ़ के और अलीगढ़ उनका हो गया. आलम यह था कि नीरज को फ़िल्मी दुनिया से बार-बार बुलावा आने लगा. नीरज मायानगरी की चकाचौंध से दूर रहना चाहते थे, लेकिन मुम्बई उनके स्वागत में पलकें बिछाए थी. मायानगरी में करोड़ों लोग कामयाबी का सपना पालते हैं और सारी उमर संघर्ष करते रहते हैं. वास्तव में फ़िल्मी दुनिया के लोगों से नीरज का वास्ता तो उन्नीस सौ तिरेपन में ही हो गया था. राजकपूर के पिता मुगलेआज़म पृथ्वीराजकपूर अपनी नाटक कम्पनी के साथ कानपुर आए थे.

नीरज के नाम से तब भी लोग कवि सम्मेलनों में उमड़ते थे. पृथ्वीराज कपूर ने तीन घंटे नीरज को सुना और फ़िल्मों में आने की दावत दी. नीरज ने उसे हँसी में उड़ा दिया. उन दिनों वो बुलंदियों पर थे. फिल्मों -

इल्मों पर क्या ध्यान देते. मगर इन्हीं दिनों वो देवानंद से टकरा गए. दो सदाबहार हीरो एक दूसरे के मुरीद हो गए और दोस्ती हुई तो देव साहब की दुनिया से विदाई के बाद ही टूटी. फिल्म निर्माता देवानंद कहता तो नीरज एक बार नहीं सौ बार मना कर देते लेकिन देवानंद को दोस्तों के दोस्त नीरज कैसे मना करते ? न न करते भी देवानंद ने प्रेम पुजारी के गीत लिखवा लिए.

एक के बाद एक सुपरहिट गीतों की नीरज ने झड़ी लगा दी.

वो दौर बेहतरीन प्रेमकहानियों का था. गीत नायाब, फ़िल्में शानदार और नीरज की बहार. प्रेम गीतों का अद्भुत संसार. कुछ गीतों के मुखड़े देखिए –

देखती ही रहो आज दर्पण न तुम प्यार का ये मुहूर्त निकल जायेगा –

आज की रात बड़ी शोख बड़ी नटखट है

लिखे जो खत तुझे, वो तेरी याद में हज़ारों रंग के नज़ारे बन गए

फूलों के रंग से, दिल की कलम से

शोखियों में घोला जाए फूलों का शबाब

आज मदहोश हुआ जाए रे

रेशमी उजाला है , मखमली अन्धेरा

रंगीला रे तेरे रंग में रंगा है मेरा मन

मेघा छाए आधी रात, सुबह न आए, शाम नआए

खिलते हैं गुल यहाँ

दरअसल प्रेम और श्रृंगार गीतों ने

प्रेम और श्रृंगार गीतोंने नीरज की पहचान एक ऐसे गीतकार की बनाई है जिससे वो आज तक मुक्त नहीं हो पाए हैं. इस कारण उनके जीवन-दर्शन और उनके भीतर छिपे यायावर को लोग नहीं समझ पाए. ज़िंदगी की कठिन सच्चाई और नीरज के आसान शब्द. एक गीत है - बस यही अपराध मैं हर बार करता हूँ आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ और ए भाई ज़रा देख के चलो. दरअसल राजकपूर तो इस गीत को लेकर उलझन में थे - आखिर यह कैसा गीत है. इसकी धुन कैसे बनाई? नीरज ने मुश्किल आसान कर दी. लेकिन बदलते ज़माने पर आखिर किसका जोर है. छ:-सात साल नीरज मायानगरी में रहे, मगर दिल तो अलीगढ़ में ही छोड़ गए थे. वहीं अटका रहा. अपने शहर की तड़प और बढ़ गई. जब फ़िल्म निर्माता गीतों में धुन के मुताबिक़ तब्दीली पर ज़ोर देने लगे, नीरज का मन कहता - छोड़ो क्या धरा है मुम्बई में. एक दिन तो राजकपूर को खरी-खरी सुना दी. उनसे कहा, भाई देखो ! फिल्म इंडस्ट्री को चाहिए बिना पढ़े लिखे लोग. मैं तो पढ़ा लिखा हूँ. प्रोफेसर हूँ. मुझे भूखों मरने का संकट नहीं होगा. मरेंगे आपके बिना पढ़े-लिखे लोग. मैं उनके इशारे पर थोड़े ही गीत लिखने आया हूँ. इसी बीच उनके साथी भी एकएक कर साथ छोड़ने लगे. रौशन है, एस डी बर्मन गए, फिर शंकर जयकिशन की जोड़ी टूट गई तो 1973 में नीरज ने मायानगरी को अलविदा कह दिया. बोरिया-बिस्तर समेटा और अलीगढ़ लौट आए. आप कह सकते हैं कि नीरज वो गीतकार थे जिन्हें मायानगरी ने बड़े अदब से बुलाया था और मोहभंग हुआ तो उसे ठुकरा कर चले आए.

उसके बाद देवानंद ने बहुत ज़िद की तो उनकी आख़िरी फ़िल्म चार्जशीट के लिए एक खूबसूरत गीत रचा. देवानंद तो चले गये पर नीरज के दिल में देवानंद आख़िरी साँस तक धड़कता रहा. माया बहुत लोगों को लुभाती है, लेकिन नीरज वो है जो मायानगरी की माया से कोसों दूर रहा.

आमतौर पर नीरज को प्रेम और श्रृंगार के गीतों को गढ़ने वाला अदभुत शिल्पी माना जाता है. लेकिन नीरज के तमाम रूप हैं. उनके गीत बदलते दौर का दस्तावेज़ हैं और उनके गीत इसका सुबूत. एक दौर ऐसा भी आया था जब हर शहर में महिलाएँ, लड़कियाँ और सुंदरियाँ उनके पीछे पड़ जाती थीं. नीरज के लिए उनसे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता था. एक बार तो एक महिला ने उन्हें इतने प्रेमपत्र लिखे कि उन पर बाद में एक संकलन प्रकाशित हो गया. इस संकलन से ऐसे ही कुछ पत्रों की बानगी आपके लिए पेश है. ये पत्र वास्तविक हैं और हिंदी की एक प्रसिद्ध लेखिका द्वारा लिखे गए हैं. इनका साहित्यिक महत्व इसलिए है क्योंकि प्रेम के अलावा इनमें जीवन की अनेक सामयिक और शाश्वत समस्याओं पर विचार किया गया है.

पत्र-1

प्रिय नीरज जी

.....आपका काव्यपाठ सुनकर यकायक ही मुझे अपने स्वयं के जीवन से एक आनंद मिश्रित एकत्व का अनुभव हुआ है. इन कविताओं से मेरी खोई आत्मा फिर प्राप्त हो गई है.... . मुझे सूचना मिली है कि आप यहाँ फिर आ रहे हैं. विश्वास करती हूँ कि आपसे पहली बार भेंट करने की मेरी कामना पूरी होगी..... .

आपकी नी .....

पत्र 2

.....आपका पत्र जो स्नेह सिक्त और मनरंजन है - उसके लिए आभारी हूँ |....हाँ मैं वही हूँ जो उस दिन जब आप कविता पाठ कर रहे थे - आपके ठीक सामने बैठी थी .....

पत्र 3

प्रिय बंधु

तुम्हारी प्यारी आवाज़ सुनने के लिए मैं इतनी विकल थी लेकिन निरंतर प्रयत्न करने पर भी पटना रेडियो के कवि सम्मेलन में नहीं सुन पाई ...क्या तुम सचमुच पटना रेडियो पर बोले थे ?...फिर भी तुम मेरे लिए अभी भी अपरिचित और अनजान ही हो.... |

पत्र -4

मेरे परम मित्र

वह कौन सी मंजिल है, जहाँ हम जा रहे हैं? वह कौन सा स्वप्न है जिसे हम अपनी रातों का राजकुमार और नींद का श्रृंगार बना रहे हैं ...| तुम कैसे हो? तुम्हारे विषय में लोगों से तरह-तरह की बातें सुनती हूँ. लेकिन तुम्हारे विषय में कोई धारणा बना लेने की ज़ल्दबाजी मैंने नहीं की है |....अच्छा अगला पत्र क्या तुम मुझे हिंदी में लिखोगे?

तुम्हारी ही
नी .....

पत्र 5

प्यारे कवि

आज रविवार है. मैं घर पर हूँ और साँझ की इस घोर उदासी में डूबी हूँ ....| मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझसे बहुत अधिक आशा मत रखो क्योंकि मैं तुम्हारी कल्पना के विपरीत भी हो सकती हूँ ...तुम बहुत व्यग्र मालूम होते हो ...अगर हो तो फिर देर क्यों करते हो ...आ क्यों नहीं जाते? आओगे न? मैं प्रतीक्षा कर रहीं हूँ |.... नी .....

पत्र 6

गीतों के राजकुमार

मैं तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानती ....क्या तुम मुझ पर विश्वास करते हो? और क्या यह मानते हो कि मैं ईमानदार हूँ....जब मैं तुमसे कहती हूँ, काश! मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकती....इस समय सुबह के चार बजे हैं....सारा संसार सो रहा है....तुम भी इस समय अपनी, 'पत्थरों के देश की राजकुमारी' के सपनों में डूबे होगे...नहीं मैं रोमांटिक नहीं हूँ....मैं तुमसे क्षमा माँगना चाहती हूँ. नीर....क्या तुम मुझे क्षमा करोगे?...यह सत्य है कि तुम सुखी नहीं हो...इसलिए फिर पूछती हूँ....क्या किसी प्रकार भी मैं तुम्हें सुखी कर सकती हूँ ...प्यारे कवि...मुझे डर है कि हमारा मिलन अब एक असफल मिलन ही सिद्ध होगा....नीर....मैं हृदय से धार्मिक स्त्री हूँ...जीवन के प्रति ईमानदार हूँ...सौन्दर्य को प्यार करती हूँ...सत्य को खोज रही हूँ...पश्चाताप बुरा समझती हूँ....क्या तुम्हारी रागवृति और मेरी त्यागवृति का मिलन बिना किसी विस्फोट के सम्भव है?....बहुत बार मेरा मन करता है कि तुम्हारे पास आ जाऊँ और तुम्हारे निकट बैठ कर जी भर कर रो लूं .....

तुम्हारी अपनी ही

नी.....

लेकिन 75 साल के सफ़र में पैंसठ साल तक नीरज ने जो काव्य साधना की, उसके बारे में लोग न के बराबर ही जानते हैं. दरअसल नीरज के गीतों में व्यवस्था के प्रति विद्रोह, इंसानियत का पाठ, जीवन दर्शन, आध्यात्मिक सोच और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का जो असर है, उसके मुकाबले प्रेम गीत तो एक फीसदी नहीं हैं. खुद नीरज भी यही मानते थे.

आज़ादी से पहले जब अँग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ़ कोई ज़ुबान नहीं खोल सकता था तो नीरज ने विद्रोह गीत गाकर खलबली मचाई थी. देश आज़ाद हुआ तो भ्रष्टाचार के मुद्दे पर नौकरी को लात मार दी. सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक मूल्यों में गिरावट पर उनकी कलम खूब चली. देशसेवा के नाम पर राजनीति करने वालों की उन्होंने जमकर ख़बर ली.

आख़िरी दिनों में देह तो थकने लगी थी. मगर दिल और दिमाग़ उतना ही सक्रिय. उनका एक दिन कैसा था?

वक़्त पर उठते रहे. सूरज को सलाम करते थे. वाकर के सहारे चल कर आते. बरामदे में पहली चाय होती, फिर पढने का सिलसिला. तब तक कुछ दोस्त दीवाने आते. दुनिया जहान की बातें. कभी-कभी पुरानी यादों में खो जाते. तस्वीरों और अपनी ही किताबों के ज़रिए. अपने आप से बातें करते रहते थे. अब तक के सफ़र से पूरी तरह संतुष्ट.

सदी के इस मुसाफिर को अपने सफ़रनामें पर कोई ख़ास अफ़सोस नहीं रहा. न उनको दौलत की चाह थी न शौहरत की चाह, कुछ चाह थी तो बस इंसानियत की चाह थी. धूप चढ़ते ही नीरज को चिट्ठियों के उत्तर

भी देने होते थे. हर खत का जवाब देना मुमकिन नहीं. फिर भी सिंगसिंग से उत्तर लिखवाते थे. कभी-कभी ख़ुद भी लिखने बैठ जाते. कोई दीवाना उनसे खत में कविता की फरमाइश कर बैठा तो....अब नीरज की कविता तो सिंग सिंग नहीं लिखेगा न?

दोपहर होने पर लंच के लिए भीतर जाते. फिर आराम. शाम की चाय उस दिन हमारे साथ पी थी. रात देर तक वो हमसे बतियाते रहे थे. कुछ मित्र अनेक दशकों से रोज़ शाम को आते थे. रम और रमी की महफ़िल जमती थी. उस दिन भी जमी थी. रात घनी होती गई. दोस्तों की महफ़िल बर्खास्त हो चुकी है. रात की ब्यारी में दो फुल्के और सादा दाल या फिर दलिया. बीते दिनों एक ऑपरेशन के बाद चलने में कुछ तकलीफ होती थी. वाकर का सहारा लेना पड़ता था. मैं भी उन्हें सोने देना चाहता था.

लेकिन बोले - रुको. बहुत दिनों के बाद दिन भर इस तरह किसी के साथ रहा हूँ. मैं शुभ रात्रि कहना चाहता था, पर उन्होंने दो मिनट के लिए रोक लिया. बोले, साठ बरस पहले एक मृत्युगीत लिखा था. इसे सुन-सुन कर लोग रोया करते थे. दुःख और अवसाद में डुबो देने वाला अपना ये गीत कुछ दिनों से रोज़ रात को याद आता है. कवि सम्मेलनों में अक्सर कवियों से गीत सुनाने की फरमाइश की जाती है लेकिन अनेक शहरों में आयोजक मुझसे प्रार्थना करते थे कि वो इतना दर्द भरा मृत्युगीत न सुनाएँ . सैकड़ों लोग कई-कई दिन इसे सुन कर सो नहीं पाते थे. मगर मुझे तो हर रात ये गीत याद आता है और सुला कर चला जाता है. हाँ ये ज़रूर सोचता हूँ कि हो सकता है, ये रात मुझे हमेशा के लिए सुला दे. और फिर वो पूछते हैं, इतना दर्द भरा गीत इस घनी रात में सुनना चाहोगे या फिर नींद प्यारी है. मैं उत्तर देता हूँ, "मैं अपनी आख़िरी साँस तक आपको गाते हुए सुनना चाहता हूँ. आप बेहिचक सुनाएँ ". फिर नीरज गुनगुनाने लगे -

अब शीघ्र करो तैयारी मेरे जाने की
रथ जाने को तैयार खड़ा मेरा
है मंज़िल मेरी दूर बहुत, पथ दुर्गम है
हर एक दिशा पर डाला है तम ने डेरा
कल तक तो मैंने गीत मिलन के गाए थे
पर आज विदा का अंतिम गीत सुनाऊँगा
कल तक आँसू से मोल दिया जग जीवन का
अब आज लहू से बाक़ी क़र्ज़ चुकाऊँगा
बेकार बहाना, टालमटोल व्यर्थ सारी
आ गया समय जाने का - जाना ही होगा
तुम चाहे कितना चीखो चिल्लाओ, रोओ
पर मुझको डेरा आज उठाना ही होगा
देखो लिपटी है राख चिता की पैरों पर
अंगार बना जलता है रोम-रोम मेरा
है चिता सदृश्य धू-धू करती ये देह सबल
है क़फ़न बँधा सर पर, सुधि को तम ने घेरा
जब लाश चिता पर मेरी रखी जाएगी
अंजानी आँखें भी दो अश्रु गिराएँगीं

पर दो दिन के ही बाद यहाँ इस दुनिया में
रे याद किसी को मेरी कभी न आएगी
लो चला, सँभालो तुम सब अपना साज़-बाज़
दुनिया वालों से प्यार हमारा कह देना
भूले से कभी अगर मेरी सुधि आ जाए
तो पड़ा धूल में कोई फूल उठा लेना

गीत बहुत लम्बा है. मेरी याद में सिर्फ यही पंक्तियाँ बाक़ी रह गईं हैं.

आवाज़ मद्धम पड़ती जा रही है. गीतों का सम्राट सो चुका है. मैं लाश की तरह देह को अपने पर लादे चल पड़ता हूँ. बड़ा बहादुर बनता था. चला था - मृत्युगीत सुनने. उस दिन से रोज़ रात बिस्तर पर ये गीत मुझे झिंझोड़ देता है, सोता हूँ, जागता हूँ, रोता हूँ, सुबह हो जाती है. रात चली जाती है. मृत्युगीत मेरी देह से, मेरी आत्मा से चिपक गया है. मृत्युगीत अमर है. ज़िन्दगी का सच है. नीरज की देह आज नहीं है. मगर नीरज कभी नहीं मरेगा.

महाकवि नीरज

सुशील शर्मा

नीरज की पाती मिली, मुझे आज अलभोर।
हँसते हुए वो चले, छोड़ जगत का शोर।

गीत बुलाती कल्पना, कविता के अंदाज।
अब जाने कब आएगी, नीरज की आवाज़।

शिल्प कला में निपुणता, भाषा शुद्ध सरोज।
शब्दों के विन्यास से, गीतों में है ओज।

शब्द-शब्द मणि सरस हैं, भाव भक्ति से प्रोत।
गीत ग़ज़ल कविता बनी, विमल भाव की स्त्रोत।

जीवन दर्शन प्रेम पर, है आधारित गीत।
नीरज ने चुन चुन लिखीं, दर्द भरी वो प्रीत।

कविता उनकी प्रेमिका, कविता ही आराध्य।
कविता से साँसे शुरू, कविता जीवन साध्य।

नीरज को जिसने पढ़ा, चढ़ा न दूजा रंग।
उनके गीतों में मिली, प्रेम प्रीत की भंग।

यादों में नीरज बसे, गीत ग़ज़ल सी धूप।
जीवन के संघर्ष में, कविता के प्रतिरूप।

एक सितारा टूट कर, चला गया आकाश।
हम सब को वो दे गया, साहित्यिक विश्वास।

हिन्दी और हम

उमेश मेहता

भारत की लगभग आधी आबादी की मातृभाषा एवं अन्य सभी भारतीयों की राज-भाषा हिन्दी के विषय में लिखने या बातचीत करने में मुझे जिस गौरव की अनुभूति होती है, उसका बयाँ करना मेरे लिए कठिन है. फिर भी अपने लेखन या बातचीत में मैं इसको अभिव्यक्त करने की कोशिश करता हूँ. पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इतने अधिक जनमानस की भाषा होने पर भी कहीं-न-कही इसके प्रति सम्मान में कमी है. ऐसा क्यों? इस पर हम सभी को सोचना होगा.

भारत एक ऐसा विशाल देश है जहाँ लगभग हर १०० मील पर बोली में बदलाव आ जाता है. भिन्न-भिन्न धर्मों, समुदायों, जातियों व भाषाएँ बोलने वाले लोग यहाँ रहते हैं और अतिश्योक्ति न होगी यदि कहा जाए कि लगभग १००० से ज्यादा बोलियाँ बोली जाती हैं. तथा हर चार-पाँच सौ मील पर भाषा बदल जाती है. और जब भाषा बदलती है तो सहज रूप से रहन-सहन, रीति-रिवाज़ों और संस्कृति में भी बदलाव आता है.

ऐसे विभिन्नता में एकता वाले देश को यदि कोई चीज़ एक-दूसरे से बाँधती है तो वह है हिन्दी भाषा. यही कारण है मेरे गर्वित होने का इस भाषा पर.

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में दूसरी भाषा पर थोपा नहीं गया. तथापि बहुत गहन सोच-विचार के पश्चात् इसे वैज्ञानिक मानक स्तरों पर सर्वश्रेष्ठ भाषा का दर्जा अवश्य दिया गया है.

देश के आज़ाद होने के पश्चात् प्रशासन को सुचारू रूप से कैसे चलाया जाए और कार्य का निस्पादन तुरंत हो, यह सवाल उस समय सभी के समक्ष था. विरासत में मिली अँग्रेजी (और इससे पहले फ़ारसी मुगलों से) में अब कार्य करना सम्भव न था तथा उर्दू जो कि उस समय न्यायलय की भाषा थी व प्रचालन में थी, हिन्दी की बहन होते हुए भी सभी के लिए सहज नहीं थी. अब करा क्या जाए? विशाल देश, बीसियों भाषाएँ. कैसे होगा सम्प्रेक्षण सरलता से एक-दूसरे से प्रशासनिक स्तर पर. यदि बंगला भाषी क्षेत्र से पत्र मराठी भाषी प्रदेश में आए तो उसके अनुवाद में व उसी भाषा में उत्तर देने में कितना अधिक समय, श्रम व दान लगेगा, उस समय विचारणीय प्रश्न था. यदि यह सब भी ठीक मान लिया जाए तो जिस कार्य के लिए पत्र आया है उसके निस्पादन में जो अधिक समय लगेगा, वह भी उचित नहीं. तब सोचा गया कि ऐसी एक भाषा हो जो सभी को स्वीकार्य हो तथा भारत को जोड़ सके और इस प्रकार संविधान में सन् १९५० में हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्थान मिला.

यह ठीक है कि भाषा जो देश को आपस में जोडती हो, स्वीकार्य हो, उसका प्रयोग हमें किसी न किसी रूप में ज्यादा से ज्यादा करना चाहिए तथा साथ ही साथ उस पर गर्व भी होना चाहिए.

पर क्या आज के समय में वास्तव में ऐसा है? आइये, हम सब मिल बैठकर इस पर विचार करें और जाने कि कहाँ कुछ कमी है. भाषा को जीवित रखने व उसे प्रचारित व प्रसारित करने में सबसे ज्यादा भूमिका होती है जनमानस की. जनमानस भाषा के विषय में क्या सोचता है, क्या वह उसका सम्मान करता है या कि मजबूरन सरकारी आदेशों के कारण अपनाये हुए है.

जहाँ तक मुझे ज्ञात है शायद ही किसी देश को अपनी भाषा को सम्मान दिलाने के लिए इतना श्रम करना पड़ रहा हो जितना कि हमें; या किसी देश को अलग से एक सरकारी विभाग ही इस कार्य के लिए स्थापित करना पड़ा हो.

मेरे अनुसार हम भारतीयों की समस्या है कि हमारे राजनीतिक व सामाजिक परिवेश ऐसे रहे कि हम दो धाराओं बँट गए. २०० साल के अँग्रेजी राज से हमें विरासत से मिली अँग्रेजी और अँग्रेजियत जिसने हमें बताया कि अभिजात्य होने के लिए इसका प्रयोग आवश्यक है. हम भारतीय स्वयं को अभिजात्य प्रदर्शित करने

के लिए सहारा लेते रहे हैं अँग्रेजी भाषा का जो कि आज भी कायम है. राजनैतिक परिस्थिति रही, विरासत में रही अँग्रेजी भाषा व सामाजिक परिस्थिति रही, अभिजात्य होने का दम्भ अँग्रेजी भाषा बोलकर – और इसके बीच में पिस गई हमारी हिन्दी. हम १०० करोड़ भारतीय परोक्ष या अपरोक्ष रूप से हिन्दी से जुड़े हैं. या तो यह हमारी मातृभाषा है, या इसे हम पढ़-लिख सकते हैं या इसमें वे भी सम्प्रेक्षण कर सकते हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है. हिन्दी इतनी सरल और वैज्ञानिक भाषा है कि सरलता से ही सभी सीख जाते हैं. अत: हिन्दी भाषा पर कोई ख़तरा नहीं है इसके लुप्त होने का संस्कृत या पालि की भाँति – कारण संसार का लगभग छठा भाग इससे जुड़ा है. पर दु:खद है कि हम इसे सम्मानित नहीं कर पाते और इसमें सम्प्रेषण कर गौरवान्वित महसूस नहीं करते – कारण स्वयं को पढ़ा-लिखा, अभिजात्य होने को सत्यापित करवाने के लिए अँग्रेजी का मोह.

मेरा ऐसा विश्वास है कि जब तक हमरी सोच में बदलाव नहीं होगा हम हिन्दी भाषा से नहीं जुड़ेंगे. और हिन्दी-अँग्रेजी का द्वंद्व बना रहेगा. अँग्रेजी बोलने और समझने वाले अभिजात्य समझे जाएँगे और हिन्दी बोलने वाले साधारण जन. कहीं तो कुछ कमी है जो इस असंगत भावना को बढ़ा रही है. इसी कुछ को बदलना होगा और यह बदलाव सरकारी आंकड़ों की बजाय जनमानस में करना होगा.

हिन्दी भाषा की स्थिति अजीब है. एक ओर सरकारी विभागों में इसमें काम करने का दबाव सरकारी स्तर पर एवं दूसरी ओर जनमानस हिन्दी को पूर्णत: जानते-समझते हुए भी जुड़ने में कहीं हीन भावना का शिकार. नई पीढ़ी तो हिन्दी भाषा से जुड़ने के लिए कतई तैयार नहीं. धरातल पर यही सत्य प्रतीत होता है. क्या सरकारी फाइलों में हिन्दी में कार्य कर इस भाषा को सम्मान दिलाया जा सकता है या आज की नई उभरती इंटरनेट व मोबाइल की पीढ़ी हिन्दी को सहजता से ले पा रही है या उसके मन में हिन्दी के लिए सम्मान उत्पन्न हो रहा है? हो सकता है नई पीढ़ी वैश्वीकरण के कारण द्विविधा में हो? तो अब क्या करा जाए? मेरे विचार से जरूरत है सोच में बदलाव की. जरूरत है लेखन कार्य में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग व भाषा का प्रचार-प्रसार. लगभग हम सभी हिन्दी बोलते-समझते हैं पर यदि कहीं लेखन कार्य हो तो हिन्दी को पीछे छोड़ अँग्रेजी अपना लेते हैं. हाँ! जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है वहाँ कुछ अपवाद हो सकते हैं. मुझे अँग्रेजी भाषा से कोई परहेज़ नहीं है और ना ही इस भाषा के प्रति कोई रोष है. मेरे मन में सभी भाषाओं के प्रति हृदय से सम्मान है. यदि आप कोई अन्य भाषा जानते हैं या सीखते हैं तो आपके व्यक्तित्व में एक अन्य गुण जुड़ जाता है जो आपके आत्मविश्वास को बढाता है और जीवन में कई बार बहुत काम आता है. यहाँ मेरा विनम्र निवेदन है कि आप दूसरी भाषाओं से कितना भी जुड़ें पर अपनी भाषा हिन्दी के प्रति निरुत्साहित न हों. इसमें वार्तालाप या पत्र-व्यवहार कर अपने को अन्य से कम न आँकें. जब कभी विदेश में दो व्यक्ति एक देश के या एक भाषा जानने वाले मिलते हैं तो तुरंत ही अपनी भाषा में वार्तालाप शुरू कर देते हैं क्योंकि कहीं न कहीं वे गहराई से अपनी भाषा से जुड़े हैं. अत: मैं चाहूँगा कि हम सभी भारतवासी अपनी प्रिय हिन्दी को बिना किसी हीन भावना के हृदय से अपनाएँ.

भारत सरकार का राजभाषा विभाग अपना कार्य पूर्ण निष्ठा से कर रहा है, पर उनका कार्य सरकारी फाइलों तक ही सीमित रह गया है. इतने वर्षों बाद जहाँ हिन्दी जन-जन व स्थान-स्थान पर होनी चाहिए थी, वह रह गई सिमट कर सरकारी दफ्तरों व आँकड़ों में. पर इसके बावजूद भी बहुत-सा कार्य हिन्दी में होना शुरू हुआ है. और वह जनमानस को उसकी अपनी भाषा में सरकारी स्तर पर, व्यक्तिगत स्तर पर सुलभ हुआ है. यह एक बहुत ही सकारात्मक प्रशंसनीय उपलब्धि है.

पर इसका दूसरा पक्ष है कि जिस भाषा के प्रसार को कम करने के लिए सरकार इतने प्रयत्न कर रही है वह भाषा 'अँग्रेजी' बिना कुछ प्रयास किए फल-फूल रही है. तथा जनमानस इससे मन से जुड़ रहा है. इसका कारण चाहे अँग्रेजी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय होना हो या शिक्षा व्यवस्था का अँग्रेजी भाषा में होना या कोई अन्य, पर कोई कारण तो है ही. मैं यहाँ सभी पाठकों से विनम्र अनुरोध करूँगा कि स्वयं को टटोलें और इसका कारण जानने का प्रयत्न करें कि हम हिन्दी से क्यों नहीं जुड़ पा रहे हैं. आइये, हम सभी हृदय से हिन्दी से जुड़ने की, इस पर गर्व करने की कोशिश करें और इसे बिना किसी हीन भावना के अधिक से अधिक प्रयोग में लाएँ.

दिल में बसाओ

प्रिय हिन्दी के प्रति उद्गार

ललिता शर्मा

बहुत हो चुकी हैं नीति की बातें,
नियम-अधिनियम और रीति की बातें,
शतक दस जीकर बड़ी हो गई हूँ,
न ऊँगली पकड़ मुझको चलना सिखाओ,
कि अब तो मुझे अपने दिल में बसाओ.

नहीं चीज़ हूँ मैं प्रदर्शन की कोई,
पराये प्रशासन में बरसों मैं रोई,
सक्षम, सरल और सहज हूँ बहुत मैं,
न अब और मुझको अपाहिज़ बनाओ,
कि अब तो मुझे अपने दिल में बसाओ.

सरल वर्तनी से बनी मेरी काया,
बृहद शब्द-भंडार है मेरी माया,
पड़ी हूँ मैं गागर में सागर समेटे,
मंथन करो और नवरत्न पाओ,
कि अब तो मुझे अपने दिल में बसाओ.

विदेशों में उत्सव मनाने से केवल,
न मिल पाएगा तुमको वाज़िव कोई हल,
मैं पैरों पे अपने खड़ी हो गई हूँ,
न इंग्लिश की बैसाखिओं पर चलाओ,
कि अब तो मुझे अपने दिल में बसाओ.

चलो मत चालें निहायत सियासी,
ये साजिश पुरानी, बहाने हैं बासी,
ऐलान कर दो कि मैं आ रही हूँ,
न अब और कोई फ़साने बनाओ,
कि अब तो मुझे अपने दिल में बसाओ,
कि अब तो मुझे अपने दिल में बसाओ.

हिन्दी के शत्रु : सत्ता, सम्पत्ति एवं सँस्थाएँ

(गुड़गाँव में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के ४३ वें अधिवेशन में डॉ. माचवे द्वारा राष्ट्रभाषा परिषद सभापति के रूप में दिए गये भाषण का संक्षिप्त रूप – श्री निर्मलकुमार पाटोदी के सौजन्य से.)

डॉ. प्रभाकर माचवे

हिन्दी विरोध वस्तुत: भाषा और साहित्य के कारण से नहीं, परन्तु आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक कारणों से होता है।

पूर्वांचल में, असम में और बंगाल में मारवाड़ी व्यापारियों का विरोध हिन्दी-विरोध का रूप लेता है। उड़ीसा में संबलपुरी (हिन्दी-मिश्रित उपभाषा) अपना स्वतंत्र अस्तित्व चाहती है। दक्षिण में उत्तर भारत, संस्कृत, आर्य, ब्राह्मण और हिन्दी का विरोध एक साथ किया जा सकता है। केरल में विरोध उतना तीव्र नहीं, परन्तु विन्ध्यांचल के नीचे सभी भाषिक अल्पसंख्यकों को भय है कि हिन्दी अनिवार्य-प्रशासनिक भाषा होते ही नौकरियों में अधिकतम और अधिकार प्राप्त कर लेंगे। सब दक्षिणी लोग 'द्वितीय श्रेणी के नागरिक बन जाएँगे। आय. ए. एस. आदि पदों में, विज्ञान तकनीकी में अहिन्दी-भाषी ही अधिक हैं।

अँग्रेज़ी के पीछे इंग्लैण्ड, अमेरिका और अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं से बड़ी राशियाँ आती है। 'इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंग्लिश' और ईसाई धर्मसंस्थाओं द्वारा संचालित शिक्षालय, चिकित्सालय, समाजसेवी संस्थाएँ बड़े पैमाने पर भारत के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को विदेश-यात्राएँ दिलवाती हैं। हिन्दी उस बड़ी आर्थिक स्पर्धा में कहीं भी नहीं ठहरती। उर्दू-भाषियों खाड़ी के देशों से विशेष धार्मिक शिक्षा के नाम पर बड़ी इमदाद आती है। ये सब बातें हमारी साहित्य-संस्थाओं के विचार क्षेत्र से परे या बाहर है।

हिन्दी केवल भावना के बल पर जीती है। अन्य भाषाएँ अधिक व्यावहारिक हैं।

कहीं हिन्दी का विरोध धर्म सा जाति के नाम पर, कहीं सांस्कृतिक श्रेष्ठता के नाम पर, कहीं आर्थिक लालच के नाम पर, कहीं 'आधुनिकता' और वैज्ञानिकता के नाम पर, कहीं अल्पसंख्यकों के आत्म-निर्णय के अधिकार के नाम पर होता है। हम ज्यों-ज्यों राजनीति में अलगाववादी और विघटनकारी शक्तियों की वृद्धि देखते हैं, हिन्दी पिछड़ती, सिमटती जाती है। पहले जम्मू हिन्दी का केन्द्र था। अब वह कश्मीरी के विरोध में डोगरी का केन्द्र है। हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी भाषा की अस्मिता का आन्दोलन है। मैंने हिंदी पुस्तकों के हरियाणवी में और कुरयाली (झारखण्ड की भाषा) में अनुवाद देखे हैं और उनके लिए पुरस्कारों की माँग सुनी है। मेरे पास नागपुर से प्रकाशित एक गोंडी पत्रिका आती थी। नेपाली से अलग गोरखाली को, गोवा में कोंकण को, गुजरात में कच्छी को, तुलू और संथालीको स्वतंत्र दर्जा दिलाने की माँगे, आन्दोलन और सँस्थाएँ देखी हैं। अब भारत में एक संस्था रोमन लिपि में सब भाषाओं के लिखे जाने का आग्रह करना चाहती है।

राजस्थान में मिथिला में, मालवा और छत्तीसगढ़ में, भोजपुर और बुन्देलखण्ड में अपनी-अपनी भाषा-विशेषता को लेकर मातृभाषाओं और जनपद राष्ट्र की संचेतना बढ़ रही है। यह सारा विवाद प्रदेश पुनर्निर्माण की बीस वर्ष पुरानी बात से शुरु हुआ।

हमने राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर वैज्ञानिक ढंग से न विचार किया है, न समस्याओं के हल का व्यावहारिक चिंतन किया है। आज डेढ़ सौ से अधिक विश्वविद्यालय हैं। विज्ञान के विषय के अध्ययन में स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी कहीं नहीं है, न इंजीनियरिंग या चिकित्सा की शिक्षा में हिन्दी का पूर्ण प्रवेश हो पाया है। केवल मानविकी के विषयों में राष्ट-भाषा से काम लिया जा रहा है और वह भी मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार और उत्तरप्रदेश के कुछ विद्यालयों में।

पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी अनुवाद के द्वारा ही अधिक हुआ है। अँग्रेज़ीदां अपना उच्चासन छोड़कर जनसाधारण तक आना नहीं चाहते। उनका बस चले तो वे किंडरगार्टनसे अँग्रेज़ी चलाकर अपने वर्ग का न्यस्त स्वार्थ चलाए रखें, अनंतकाल तक।

प्रशासनिक सेवाओं में हिन्दी और मातृभाषाओं में परीक्षाएँ देने का प्रावधान दो दशकों से है, परन्तु अधिक परीक्षाएँ अँग्रेज़ी माध्यम से ही आई. ए. एस., आई. एफ. एस. होते हैं। इसके मूल में हमारी राष्ट्र के बारे में पश्चिमीकरण की ओढ़ी हुई मानसिकता है। उसी को हमने आधुनिकता मान लिया है।

भारत है तो भारती है। परन्तु भागवत-पुराण में जिसे अजनाभवर्ष कहा गया और वायुपुराण में हेमवतवर्ष, वह हमारा नवखण्ड कार्मुख संस्थान, आज सिमटकर मध्यदेश तक आ गया है। वहाँ के ग्रामांचल में भी हमारी आकाशवाणी और दूरदर्शन की मानक-हिन्दी बहुत कम ज्ञेय है। हिन्दी केवल फ़िल्मों, कवि-सम्मेलन के मंचों और नेताओं के भाषणों की श्रुति ही नहीं है। पर हिन्दी भाषा-भाषी जनसंख्या के अनुपात में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या और खपत अन्य भाषाओं की तुलना में नगण्य है। बांग्ला, मलयालम, मराठी और तेलुगुमें छपनेवाले समाचार पत्र कही अधिक पढ़े जाते हैं।

यों राष्ट्रभाषा हिन्दी के बोले हुए और लिखे हुए रूपों में पाँच-स्तर भेद है। वे सभी विकसित आधुनिक भाषाओं में होते हैं, परन्तु साक्षरता के प्रमाण-भेद से अपेक्षया अधिक जान पड़ते हैं : (१) बोली जाने वाली हिन्दी (२) पढ़ी या सिखाई जाने वाली व्यावहारिक हिन्दी (३) साहित्यिक हिन्दी (इसमें भी एकरूपता नहीं है) (४) सरकारी, पारिभाषिक शब्दावलीयुक्त हिन्दी और (४) सुनी जानेवाली हिन्दी : फ़िल्म, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि से प्रसारित हिन्दी से प्रसारित हिन्दी।

जब हम अँग्रेज़ी के 'स्टैंडर्डाइजेशन' की तरह हिन्दी से अपेक्षा करते हैं (देखिए पुण्यश्लोक राय का ग्रंथ 'लैंग्वेज स्टैंडर्डाइजेशन' और उसमें डॉ. रघुवीर के अँग्ल-हिन्दी कोश पर टिप्पणी) वहाँ हम भूलते हैं कि हर संस्कृति का अपना स्वरूप, विकास की गति और परम्परा तथा प्रयोग का परस्पर द्वन्दात्मक सम्बंध होता है। भारत न अमेरिका है, न यूरोप न चीन। भारत, नेपाल या श्रीलंका या बांग्लादेश या अफ़ग़ानिस्तान भी नहीं है। भारत इज़राइल नहीं है, न अफ़्रीका का कोई देश। 'भारत' शब्द केवल भौगोलिक इकाई नहीं है, न केवल एक नस्ल या वंश के नागरिकों का नाम है, न एक धार्मिक अनुबंध का दूसरा नाम है। आज का भारत केवल एक धर्म, एक प्रजाति, एक भूखण्ड मात्र का नाम नहीं है। वह नई परिभाषाएँ बनाने से बदल नहीं जाता। हमारे संविधान निर्माताओं को उसका भान था। इस 'अनेकता-में-एकता' को उन्होंने अस्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया। उस समय तक हमारी राष्ट्रीयता में सब भाषाओं के बोलनेवालों का योगदान था। हिन्दी और हिन्दीतर भाषी साथ-साथ जेल गए, साथ-साथ उन्होंने लाठियाँ खाई और साथ-साथ सपने देखे।

१९४८ के बाद जब पद और अधिकार 'बहुसंख्यक' और 'अल्पसंख्यक' शब्द हमारे मानस पर अचेतन से उठकर मँडराने लगे तब प्रश्न पूछे जाने लगे कि एक सौ वर्ष के काँग्रेस के इतिहास में क्या कोई सिख या असमवासी या हरिजन स्वराज्य से पहले काँग्रेस का अध्यक्ष बना? नहीं बना तो क्यों नहीं बना?

मैं १९५४ में केरल गया तो एक लड़की ने प्रश्न पूछा : 'हिन्दी में कितने हरिजन लेखक हैं ?' १९५६ में असम राष्ट्रभाषा परिषद में मैं हिन्दी में बोला परन्तु अभी चार वर्ष पूर्व उसकी स्वर्णजयन्ती में अँग्रेज़ी में बोलना पड़ा। माँरीशस में एक लड़कियों के स्कूल में गत वर्ष एक श्रोता ने पूछा : 'भारत में कितने वैज्ञानिक हिन्दी प्रदेशों से हैं?' स्त्री वैज्ञानिक कौन-कौन हैं?' बांग्लादेश में ढाका में मुझसे एक प्रोफ़ेसर ने पूछा : 'बांग्ला से हिन्दी में इतने अनुवाद होते हैं, हिन्दी से बांग्ला में क्यों नहीं होते?' श्रीलंका में एक बौद्धभिक्षु ने पूछा : 'हिन्दी में कितने बौद्ध लेखक हैं?' नेपाल गया था तब वहाँ के 'प्रज्ञा प्रतिष्ठान' के एक विद्वान ने पूछा : 'भारत में अजेय या महादेवी को पद्मविभूषण आदि अलंकरण आदि नहीं मिले, ऐसा क्यों है?'

आप अपने मन से इनके उत्तर पूछें। सब बातों का एक ही निदान : 'डेढ़ सौ वर्षों की ब्रिटिश राज की ग़ुलामी' देने से अब काम नहीं चलेगा। स्वराज्य के भी ४१ वर्ष बीत गए। हमारे सरकारी प्रतिष्ठानों ने हिन्दी परिभाषा निर्माण में कोशकार डॉ. रघुवीर, रामचन्द्र वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ. कामिल बुल्के, किशोरीदास वाजपेयी आदि भाषा-वैज्ञानिकों से कोई सहायता क्यों नहीं ली? इन अनुभवी भाषाविदों को छोड़ नौसिखुए और भाषा-विज्ञान का कोई भी ज्ञान न रखनेवाले रंगरूटों और केवल सृजनात्मक लेखकों या पदेन विभागाध्यक्षों से क्यों काम लिया?

नौकर-शाही हिन्दी को जल्दी लाना नहीं चाहती थी। सबको ख़ुश करना चाहती थी। अत: वह 'अशुभस्य कालहरणस' करती रही। मैं छ: केन्द्रीय मंत्रालयों की हिन्दी सलाहकारी समितियों में रहा हूँ, और वहाँ की पद्धति देख चुका हूँ। ज्ञानी जैलसिंघ गृहमंत्री थे, तब उस सलाहकार समिति में गंगाप्रसाद सिंह जी ने कोई तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। ज्ञानी जी सहज भाव से बोल गए : 'ये सेक्रेटरी लोग आपको 'टुंगा' रहे हैं। हिन्दी लाने की किसी को जल्दी नहीं हैं।'

हमारे नौकरशाह अपने मन में अँग्रेज़ी को देवी और हिन्दी को दासी मानकर चलते हैं। जहाँ ज़रूरी नहीं, वहाँ भी अँग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं। अभी लखनऊ में भारतीय विद्याभवन की स्वर्णजयन्ती पर संगोष्ठी में मैं गया था। तीन सज्जन जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, सब हिन्दी श्रोताओं के आगे न सिर्फ ग़लत-सलत अँग्रेज़ी में बोले, पर सारे उद्धरण विदेशी विद्वानों के दिए एक महानुभाव ने। इस मानसिक दासता को क्या कीजिएगा?

तो पहली समस्या सत्ता है।

दूसरे शत्रु हमारे व्यावसायिक लोग हैं। मैं कलकत्ता में सात वर्ष तक एक भारतीय भाषा विषयक सँस्थान से जुड़ा था। मैंने देखा कि हमारे राजस्थानी भाई घर में मारवाड़ी, मेवाड़ी, हाड़ौती, जैसलमेरी हैं, अपने औद्योगिक व्यापारी संस्थानों में फ़र्स्टक्लास अँग्रेज़ी पत्र-व्यवहार करनेवाले टंकक-आशुलिपिक रखते हैं। हिन्दी में काम करने में कतराते हैं। मुण्डन-नामकरण, विवाह आदि सँस्कारों के निमंत्रण-पत्र, नववर्ष के कार्ड, अँग्रेज़ी में भेजते हैं।

नई पीढ़ी तो अंतरराष्ट्रीयता के नाम पर जेट-सेट, पाँचसितारा होटल संस्कृति की दास तथा मातृभाषा-राष्ट्रभाषा से दूर होती जा रही है। अब वहाँ हिन्दी माध्यम की माध्यमिक शालाओं में अँग्रेज़ी 'नर्सरी-राइम' पढ़ाई जा रही है।

हिन्दी के पाक्षिक-साप्ताहिक पत्र अँग्रेज़ी सह पत्रिकाओं के अनुवाद होते जा रहे हैं। प्रकाशकों का भी प्रथम ध्येय अर्थोपार्जन है, भाषा-प्रेम नहीं। सम्पादकगण अँग्रेज़ी अनुवाद पर अपने 'स्तम्भ' रँगते हैं। हिन्दी में नई कविता, नई आलोचना, नई कहानी आदि आंदोलनों के लिए लंदन, न्यूयार्क आदि अँग्रेज़ी हज-स्थान हैं। उन्हीं के उद्धरणों की भरमार होती है। सारे विज्ञापनों का माध्यम अँग्रेज़ी या अँग्रेज़ी के कृत्रिम अनुभव हैं। उपभोक्ता सँस्कृति के प्रचारक यही चाहते हैं। 'हर मौसम में रंग कोकाकोला के संग'। तो हमारी दूसरी समस्या है सम्पत्ति।

राष्ट्रभाषा के विकास में तीसरी बाधा संस्थाएँ हैं। सरकारी और ग़ैरसरकारी दोनों अँग्रेज़ों की नीति थी कि किसी समस्या का समाधान न मिले तो आयोग या समिति बना दो। हम भी यही करते आ रहे हैं। बहुत से नेक इरादों से शुरु किए हुए कई प्रतिष्ठान धीरे-धीरे 'सँस्थावाद' के जाल और घेरे में फँस जाते हैं। कहीं संस्थाओं पर बैठे हुए बुज़ुर्ग अपने-आपको या निकट सम्बन्धियों या अपनी ही उपजातिवालों को पुरस्कृत कर लेते हैं। अंधा बाँटे रेवड़ी। कहीं ये नव सामंत किसी 'वाद' का नाम लेकर चेलों-चेलियों की जमात लेकर चलते हैं। पूरा कुंभ मेले-वाला दृश्य है। हर साधु का अपना अखाड़ा है, हिन्दू धर्म का हुआ, क़िस्म-क़िस्म के गुरु, महर्षि, स्वामी, बाधा, भगवान, पनपे और पूरा 'निरानंद मार्ग' हो गया, वही दृश्य राष्ट्रभाषा के क्षेत्र में है, जिन्होंने एक भी पुस्तक बरसों नहीं लिखी या जो केवल मौखिक रूप से हिन्दी हितैषी हैं।

मेरे पास कोई पंचवार्षिक योजना या सब समस्याओं की रामबाण दवा नहीं है। नीत्शे ने कहा था - "ऐसे लोगों से सावधान रहो जो कहते हैं कि उनके पास रेडिमेड सत्य-समाधान हैं।" मैं ऐसे सरलीकृत मसीहा से आपको आगाह करना चाहता हूँ।

हिन्दी में मुझे हिन्दीतर भाषाओं से उत्तम अनुवादकों के नाम-पतों की डाइरेक्टरी चाहिए, अनुदित ग्रंथों की सूचियाँ चाहिए, दुभाषियों की सेना चाहिए, विद्वानों को खोजकर उनके 'अवस्थित' कार्य का उचित सम्मान करने वाले कद्रदां चाहिए, पैसे या पद के पीछे दुम न हिलानेवाले, चारण न बननेवाले स्वाभिमानी सेवक चाहिए, मृत्यु के बाद पद्मविभूषण या स्मृति खोने पर पद्मभूषण देना बन्द होना चाहिए, कई भारतीय भाषाओं-उपभाषाओं के हिन्दी में कोश चाहिए, दूरदर्शन पर हिन्दी पढ़ाने के लिए भाषापाठ चाहिए, हिन्दी के महान लेखकों पर आलेख-पट (डाक्युमेंटरी) चाहिए, लेखकों के सहकारी प्रकाशन चाहिए, नई पीढ़ी को भाषा रुचि पैदा करनेवाली प्रकाशित सामग्री चाहिए। ऐसी मेरी 'सहस्राक्ष-सहभ्रबाहु' माँगे हैं। उनकी ओर पहले ध्यान दें।

भागभरी

कमल कपूर

सुहाग-पर्व से एक दिन पूर्व दोपहर को मेरे ब्लॉक की छोटी-बड़ी उम्र की लगभग सारी महिलाएँ सजी-धजीं मेरे बड़े से आँगन में आ जुटी थीं और आतुर मन से इंतज़ार कर रही थीं उसका....जो साल में सिर्फ एक बार आती थी, करवे, रंगारंग काँच की चूड़ियों और सुहाग की अन्य चीज़ों की भरी हुई रेहड़ी के साथ और हँसी-ठिठोली और सुहाग-गीत गाते हुए सबको चूड़ियाँ पहनाती....आशीर्वचनों से गूँथ कर। ठसक भी निराली होती उसकी....चटक लाल, पीले, जामुनी या हरे रंग का घाघरा-ओढ़नी, हाथों में खनकती ढेर चूड़ियाँ, माथे पर दमकती चवन्नी के आकार की सुर्ख बिन्दिया और माँग में लबालब सिंदूर सजाए वह पायल छनकाते मुस्कुराती हुई आती और घंटे-दो-घंटे में रेहड़ी खाली कर हम सबको असीसती हुई लौट जाती। नाम भी तो कितना मीठा था उसका कि जुबान पर धरते ही जैसे खांड-मिश्री घुल जाए....भागभरी....जी हाँ, भागभरी। यह भागभरी आई क्यों नहीं अब तक? हम इंतज़ार कर-कर हारने को ही थे कि... "भागभरी आ गई... भागभरी आ गई," गली में खेलते बच्चों ने शोर मचाया और अगले ही पल वह सामने खड़ी थी लेकिन यह क्या...? यह हमारी वह भागभरी नहीं कोई दूसरी ही स्त्री थी जैसे। उसके माथे पर बिंदिया का सूरज नहीं चमक रहा था, माँग सिंदूर से और कलाइयाँ चूड़ियों से खाली थीं तथा देह पर मटमैली सी सफेद साड़ी थी और होठों पर मुर्झाए पीले गुलाब-सी मुस्कान....जैसे जबरन ओढ़ रखी हो। जी धक्क से रह गया मेरा।

"ये सब कब और कैसे हुआ भागभरी?" तड़प कर पूछा मैंने तो वह एक गहरी ठंडी साँस ले कर बोली, "जाने दो ना बिटिया! सुहाग-भाग के दिन ठैरे। अभाग की बात काहे सुनावें? अपने दुखड़े काहे रोवें हम? चलो आओ चूड़ी पहरावें।"

चूड़ियाँ पहनीं पर सिर्फ मैंने और बाकी किसी ने भी न चूड़ियाँ पहनीं और न करवे या कोई और सामान खरीदा उससे और घोर निराशा की प्रतिमा बनी, "तुम सबका सौहाग-भाग बना रहे छोरियों" का सामूहिक आशीष दे कर वह चली गई तो सबने मुझे आड़े हाथों लिया।

"पगला गई है क्या मधु, जो उसके हाथों आज के दिन चूड़ियाँ पहन बैठी? ऐसा भी क्या लिहाज़ कि अपने शगुन-अपशगुन की भी ना सोची तुमनें?" कुसुम जीजी ने कहा।

"अरे! जिसका खुद का सुहाग नहीं रहा वह क्या हमें...."

"बस जया, बस करो। तुम्हारे ससुर जी भी तो नहीं हैं, फिर क्यों अपनी सासू माँ को उपवास पूज कर बायना देती हो तुम? और कुसुम जीजी! आपके पापा नहीं हैं न? फिर क्यों माँ से सरगी का सामान लेती हैं आप? अपनी संकीर्ण मानसिकता से बाहर आएँ आप लोग" मैंने जया की बात पर कैंची चला कर, कराहते स्वर में कहा तो वहाँ मौन पसर गया और कुछ ही पलों में मेरा आँगन खाली हो गया। मेरी सब तथाकथित आधुनिक सखियाँ चली गईं....मेरा मन अवसादित और व्यथित करके।

साँझ को पतिदेव जय आए तो मेरी गहरी उदासी को पढ़ कर अतिरिक्त नेह से पूछा उन्होंने "आज मेरे चाँद का फूल सा मुखड़ा मुर्झाया हुआ क्यों है? करवाचौथ का उपवास तो कल है....भूखा तो कल रहना है न तुम्हें?"

मैंने छलकते नयनों के साथ उन्हें पूरा किस्सा सुनाया तो मुझे बाँहों में भर कर स्निग्ध स्वर में वह बोले "तुम लाख चाहने पर भी किसी की मानसिकता नहीं बदल सकती मधु! पर अपनी मनोदशा यानी मूड बदल सकती हो। चलो बाजारों की रौनक देख कर आते हैं और तुम्हारे लिये एक अच्छी सी साड़ी भी खरीदनी है मुझे।"

हम न किसी मॉल पर गये और न ही किसी नये बड़े आलीशान स्टोर में बल्कि शहर के सबसे पुराने बाज़ार छोटी बजरिया जा पहुँचे, जहाँ घूम-फिर कर मुझे सदा अपने बचपन वाले रौनक भरे बाज़ार याद आते हैं।

मन हरसिंगार-सा खिल महक उठा और दोपहर वाली घटना के कुप्रभाव से मुक्त हो गया कि तभी मेरे कंधे पर हाथ धरते हुए जय ने एक दिशा की ओर संकेत करते हुए कहा, "वो देखो मधु! कितना जमावड़ा है वहाँ। चलो चल कर देखते हैं कि माज़रा क्या है।"

"आप क्या करेंगे वहाँ जा कर? देख रहे हों न, सिर्फ़ औरतें ही हैं वहाँ। गोपियों में कान्हा बनना है क्या? आप यहीं रुकिये, मैं देख कर आती हूँ।" मैंने मुस्कुरा कर कहा और उस ओर चल दी।

जन-सैलाब को चीरते हुए मैं आगे तक पहुँच गयी तो देखा...जमीन पर बिछी एक बड़ी-सी चादर पर करवे, काँच की चूड़ियाँ, बिन्दियों के पत्ते और सुहाग का अन्य सामान करीने से सजा धरा था और....और उसकी परली ओर...लाल पाड़ की पीली साड़ी पहने, माथे पर चाँद सी टिकुली टाँके और भर-भर धानी-सुनहरी चूड़ियाँ पहने पान चुबलाती एक स्त्री, सुहागनों को हँस-हँसकर चूड़ियाँ पहना रही थी। एक सुखद आश्चर्य था यह मेरी आँखों के सामने क्योंकि...क्योंकि वह स्त्री कोई और नही मेरी प्यारी भागभरी थी...पूर्ण आत्मविश्वास से भरी। सहसा उसकी नज़र मुझ पर पड़ी तो वह काँप उठी और उसके चेहरे पर जैसे हल्दी पुत गई। उसने हाथ जोड़ कर दयनीय प्रार्थना भरी दृष्टि से मुझे देखा तो उस मौन प्रार्थना – “किसी को मेरा सच न बताना बिटिया” को बाँच कर मैंने भरपूर संतुष्टि से जड़ी मुस्कान उसके हवाले करते हुए आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठा दिये और हर्ष से भीगे नयन-मन लिए जय के पास लौट आई और कस कर उनका हाथ थाम लिया।

"क्या हो रहा है मधु वहाँ और तुम इतना मुस्कुरा क्यों रही हो?" जय ने पूछा तो मेरी मुस्कान कुछ और गाढ़ी हो गई "अरे जय! हम पढ़ी-लिखी औरतें तो महिला सशक्तिकरण के सिर्फ़ झुनझुने ही बजाती हैं...इस सशक्तिकरण का सही रूप तो आज और अभी देखा है मैंने। चलिये गाड़ी में बैठ कर बताती हूँ।"

क्या जरूरत है सहारों की?

डॉ. अलका गोयल

वक्त से पहले ज़िंदगी की कश्ती न डूबेगी
क्या जरूरत है किनारों की?
निराशा जीवन की आशाओं में बदल दे
क्या जरूरत है नज़ारों की?
ख़ुद शिला बन के खड़ा हो अपने पैरों पर
क्या जरूरत है सहारों की?
कर बुलंद आवाज़ तू इतनी अपनी
क्या जरूरत है नगाड़ों की?
चमचमाती रोशनी बन जा सूनी महफ़िल में
क्या जरूरत है सितारों की?
मिलेगा चैन तुझको घर की चारदीवारी में
क्या जरूरत है चौबारों की?
कब्र खोद ले मन की अपनी ही चौखट पर
क्या जरूरत है मज़ारों की?
संयम बरत ले तू अपनी कठोर वाणी पर
क्या जरूरत है प्रहारों की?
महसूस कर हर वक्त, जिसने तुझको बनाया है
क्या जरूरत है दुलारों की?

?

“कुछ सपनों के मर जाने से, जीवन नहीं मरा करता है”

श्रद्धांजलि : गोपालदास 'नीरज'

संदीप सृजन

“नीरज” हिंदी गीतों का वो राजकुमार है जिसे सदियों तक भुलाया नहीं जा सकेगा, १९ जुलाई को इस दुनिया को अलविदा कह गया। नीरज हिंदी कविता का वह महान कलमकार है जो अपने रोम-रोम में कविता लेकर जीया। नीरज जिसके गीत केवल गीत नहीं है जीवन का दर्शन बनकर जनमानस में एक नई चेतना जागृत करते हैं। ऐसे अनेक चित्र नीरज का नाम मस्तिष्क में आते ही बनने शुरु हो जाते है। नीरज जैसे साधक सदियों में होते है जिन्हें गीत, लय, भाव और शब्द स्वयं चुनते है तभी नीरज लिखते है 'मानव होना भाग्य है, कवि होना सौभाग्य' किंतु ऐसा सौभाग्य किसी-किसी को ही हासिल होता है।

गीत और कविता से प्यार करने वाले हर शख्स के दिलो-दिमाग में गोपाल दास नीरज की एक ऐसी अनूठी छवि बनी है जिसे भविष्य में भी कोई मिटा नहीं सकता। नीरज का जन्म ४ जनवरी १९२५ को यू.पी. के इटावा जिले के ग्राम पुरावली में हुआ था। जीवन का प्रारम्भ ही संघर्ष से हुआ, अलीगढ़ को अपनी कर्मस्थली बनाया, बहुत मामूली-सी नौकरियों से लेकर फ़िल्मी ग्लैमर तक, मंच पर काव्यपाठ के शिखरों तक, गौरवपूर्ण साहित्यिक प्रतिष्ठा तक, भाषा-संस्थान के राज्यमंत्री दर्जे तक उनकी उपलब्धियाँ उन्हें अपने संघर्ष-पथ पर पढ़े मानवीयता और प्रेम के पाठ से डिगा न सकीं। बहुत ही कम लोगों को यह मालूम है कि ६० और ७० के दशक में अपने बॉलीवुड गीतों के जरिये लोगों के दिलों में जगह बना चुके गोपाल दास ‘नीरज’ ने चुनाव भी लड़ा था। साल १९६७ के आम चुनाव में ‘नीरज’ कानपुर लोकसभा सीट से निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में मैदान में उतरे थे। नीरज का दृष्टिकोण स्वहित से ज्यादा जनहित रहा तभी वे एक दोहे में कहते थे-

हम तो बस एक पेड़ हैं, खड़े प्रेम के गाँव।
खुद तो जलते धूप में, औरों को दें छाँव।।

नीरज ने कविता के वस्तु-रूप को कभी नियंत्रित नहीं किया। मंच की कविताएँ हों या फ़िल्मी गीत, नीरज का कवि कहीं भी समझौता नहीं करता था। फिल्मों के लिए लिखे गए उनके गीत अपनी अलग पहचान रखते हैं। फ़िल्म-संगीत का कोई भी शौकीन गीत की लय और शब्द-चयन के आधार पर उनके गीतों को फ़ौरन पहचान सकता है। वस्तु के अनुरूप लय के लिए शब्द-संगति जैसे उनको सिद्ध थी। फिल्मी गीतों को भी वे उसी लय में मंचों से गाया करते थे-

“स्वप्न झरे फूल से, मीत चुभे शूल से, लुट गये सिंगार सभी बाग़ के बबूल से
और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे, कारवाँ गुज़र गया गुबार देखते रहे।”

ये वो गीत है जो जीवन का सार बताता है, जीवन की गहराई से रू-ब-रू करवाता है। नीरज ही कह सकते हैं कि उन्होंने जीवन को सिर्फ जीया नहीं लिखा भी है। अपनी रचनाओं में इसीलिए वे लिख गये -

“छिप छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ बहाने वालों,
कुछ सपनों के मर जाने से, जीवन नहीं मरा करता है।”

सामान्य जन के लिए उनके मन में दर्द था, इसी दर्द को वे 'प्रेम' कहते थे. प्रेम ही उनकी कविता का मूल भाव भी है, और लक्ष्य भी था। उनके कविता-संग्रह 'नीरज : कारवाँ गीतों का' की भूमिका से उन्हीं के शब्दों में - "मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और कोई दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है... अपनी कविता द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ... रास्ते पर कहीं मेरी कविता भटक न जाए, इसलिए उसके हाथ में मैंने प्रेम का दीपक दे दिया है... वह (प्रेम) एक ऐसी हृदय-साधना है जो निरंतर हमारी विकृतियों का शमन करती हुई हमें मनुष्यता के निकट ले जाती है. जीवन की मूल विकृति मैं अहं को मानता हूँ... मेरी परिभाषा में इसी अहं के समर्पण का नाम प्रेम है और इसी अहं के विसर्जन का नाम साहित्य है."

“हम तो मस्त फकीर, हमारा कोई नहीं ठिकाना रे। जैसा अपना आना प्यारे, वैसा अपना जाना रे।”

दार्शनिक चिंतन और आध्यात्मिक रुचि के नीरज का मन मानव-दर्दों को अनेकविध रूप में महसूस करता था और उनके मनन का यही विषय था. 'सत्य' किसी एक के पास नहीं है, वह मानव-जाति की थाती है और मनुष्य-मनुष्य के हृदय में बिखरा हुआ है। शायद इसीलिए नीरज ने अपनी गजल के मतले में कहा -

“अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए। जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।”

दर्शन तो उनकी लेखनी का अहम हिस्सा रहा है जब वे लिखते हैं -

“कहता है जोकर सारा ज़माना, आधी हक़ीकत आधा फ़साना,
चश्मा उठाओ, फिर देखो यारो, दुनिया नयी है, चेहरा पुराना”

नीरज को यूँ तो शब्दों में बाँध पाना मुश्किल है, और जो नीरज ने कहा है, नीरज ने लिखा है और नीरज ने गाया है उस पर कुछ लिखना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए असम्भव है । नीरज जब महाप्रयाण कर गये तब मैं अपने शब्दों में विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए यही कहूँगा-

कालखंड का युग पुरुष, गया काल को जीत।
छोड़ गया भू लोक पर, दोहें, गजलें, गीत।।

छुट्टी

ओमप्रकाश मिश्र

शाम का समय, भोजनालय में सभी फौजी साथी मौज-मस्ती कर रहे थे। हास-परिहास और अन्ताक्षरी का दौर चल रहा था। फिल्मी गीतों के साथ बर्तन वाद्य-यन्त्रों की तरह सुर और ताल दे रहे थे। प्रसन्नता का वातावरण था, किन्तु रामानुज को यह सब रास नहीं आ रहा था। उसके चेहरे के खिंचाव को देखकर कोई भी कह सकता था कि वह खुश नहीं है। उसके अन्दर की उथल-पुथल माथे पर टेढ़ी रेखाओं के रूप में अंकित है। वह स्वयं से मानसिक द्वन्द्व कर रहा है। उसका यह द्वन्द्व भारत-पाकिस्तान की जनता द्वारा लड़े जा रहे मानस युद्ध जैसा ही है।

रामानुज स्वभावतः बहुत प्रसन्नमन व्यक्ति था। उसकी चुहल भरी बातें बटालियन के साथियों को पसन्द थीं। वह बीरबल की तरह बात-बात में ऐसे व्यंग्य वाक्य बोल देता कि उसके अफसर भी हतप्रभ रह जाते। रामानुज की उपस्थिति ही ठहाकों के लिए पर्याप्त थी, लेकिन ऐसा भी नहीं था कि वह केवल जोकर के रूप में ही जाना जाता था। वह एक बहादुर सैनिक था। उसने अपनी बहादुरी कारगिल युद्ध में सिद्ध कर दी थी। नायक रामानुज 'टाइगर हिल्स' में दुश्मनों से जूझ चुका था। अब पदोन्नति पाकर हवलदार बन गया है, वही रामानुज उदास था। इस स्थिति से उबरने के लिए वह स्वयं को नियन्त्रित करने का प्रयास कर रहा था। तभी उसने अनुभव किया कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया है। पलटकर देखा तो कन्हैयालाल, उसका अपना दोस्त।

'कन्हैया तुम?'

'हाँ मैं....'

पल भर के लिए दोनों चुप रहे। सिर्फ भावनाएँ इधर से उधर, उधर से इधर पहुँच रही थीं। भावनाओं के इस विनिमय को कोई देख नहीं सकता था। केवल अनुभव किया जा सकता था। संवेदी तन्त्र अपना कार्य करते रहे। भावातिरेक से बचने के लिए कन्हैयालाल ने चुप्पी तोड़ी - 'क्यों क्या हुआ? क्या छुट्टी नहीं मिली?'

'नहीं यार!'

रामानुज ने लम्बी साँस खींचते हुए उत्तर दिया। कन्हैयालाल को पता है कि रामानुज ने छुट्टी के लिए प्रार्थनापत्र दिया है। उसने भी प्रार्थनापत्र दिया था। उसे छुट्टी मिल भी गयी है, किन्तु रामानुज को छुट्टी नहीं मिली।

'क्यों नहीं मिली छुट्टी? सी.ओ. से बताया नहीं, माँ बीमार है? कन्हैयालाल ने पूछा था।

'बताया था, लेकिन वह काँइया सुनता कहाँ है? तुम्हें तो मिल गयी है न?

'हाँ मिल गयी है, प्रार्थनापत्र के साथ तार नत्थी किया था।'

'तार?

'हाँ, तार', मैंने भैया को पत्र लिखा कि तार कर दें, तो छुट्टी मिल जाये। उन्होंने तार भेज भी दिया।

पिछले ही दिनों आया था तार, उनके एक वाक्य ने मुझे छुट्टी दिला दी।

'ऐसा क्या लिख दिया था उन्होंने?'

'बाबू बहुत बीमार हैं कन्हैया, जल्दी घर आओ।'

'सचमुच, तुम्हारे बाबू बीमार हैं?

'नहीं यार, छुट्टी के लिए ऐसा लिखा गया था।'

'तो वह तार झूठा था?'

'बिल्कुल झूठा, जब छुट्टी नहीं मिलती तब ऐसा नाटक करना पड़ता है। मैं घर जा रहा हूँ। वहाँ से तुम्हारे लिए भी एक तार भेज दूँगा।'

यह उन दिनों की बात है, जब 'तार' डाक विभाग की सबसे विश्वसनीय व तेज सेवा में शुमार थी, हालाँकि अब यह सेवा बन्द हो चुकी है।

कन्हैयालाल की बात सुनकर रामानुज कुछ कह नहीं सका। उसने दिमाग में हल्का दर्द अनुभव किया।

इतने में कन्हैयालाल ने फिर कहा, 'क्या सोचता है यार, यह दुनिया बड़ी अजीब है। यहाँ सच्चे का मुँह काला, झूठे का बोलबाला। अब देखो न, तुमने भी तो पत्र का हवाला दिया था, लेकिन कहाँ मिली छुट्टी? पत्र से अब छुट्टी नहीं मिलती, क्योंकि पत्र में लिखी हुई बातें अफसर को झूठी लगती हैं।'

'ठीक ही कहते हो, रामानुज को दोस्त की बातों में सच्चाई झलक रही थी। उसने भारी आवाज में कहा, 'घर से कई पत्र आ चुके हैं। सब में एक ही बात लिखी है, माँ की हालत बहुत नाजुक है। कभी भी दुनिया छोड़ सकती हैं। मुन्ना की भी तबियत ठीक नहीं रहती, उसे अक्सर पेचिस पड़ती रहती है। डॉक्टर अपनी फीस के लिए तकादा करता है। कहता है, 'कब तक मुफ्त में दवा करुँ?'

डाकिए ने आज सुबह ही मुन्ना का पत्र दिया था। बेटे के पत्र ने रामानुज को और अधिक व्यग्र कर दिया। पत्र में लिखे शब्द उसके सीने में चुभ रहे थे, 'पापा आपकी बहुत याद आती है। जब से आप गये, तब से हम लोगों की कोई खबर नहीं ली। पिछली होली में भी नहीं आये थे। क्या इस होली में भी घर नहीं आयेंगे? क्या आपको मेरी याद नहीं आती?'

पत्र पढ़ते-पढ़ते रामानुज भाव विभोर हो गया। उसने कन्हैयालाल की हथेली को दबाते हुए कहा, 'अब तुम्ही बताओ कन्हैया, मैं क्या करुँ? यह फौज है, कोई सिविल की नौकरी नहीं कि जब चाहा तब घर चले आये।'

पाँचवीं में पढ़ने लगा था रामानुज का मुन्ना। उसने अपने पापा को पत्र लिखा था। रामानुज पत्र को बार-बार उलटता-पलटता। उसे चूमता और फिर एक-एक शब्द पढ़ने लगता। नीले अन्तर्देशीय पत्र में घर की दशा स्याही से पुती हुई थी। माँ की बीमारी, पिता जी का बुढ़ापा, धरती की तरफ लगातार झुकती हुई उनकी कमर, जर्जर होता शरीर, बेटे की पढ़ाई, पत्नी कमला की बढ़ती जिम्मेदारियाँ, खेती-बाड़ी, मजदूरों की समस्या सारा कुछ पत्र में लिख था।

गृहस्थी का भार कमला के कन्धों पर था। वह कम उम्र में ही अधिक सयानी लगने लगी थी। पत्नी से किया हुआ वायदा आज तक रामानुज पूरा नहीं कर पाया है। सुहागरात में 'हार' देने का वायदा किया था उसने, लेकिन अभी तक नहीं दे पाया। अपना किया हुआ वायदा वह भूला नहीं। हाँ, घर की आर्थिक दशा सुधारने के चक्कर में विलम्ब अवश्य हो गया है।

'इस बार छुट्टी पर जाऊँ, तो उसके लिए 'हार' अवश्य खरीदूँगा। कमला की पसन्द का हार। गंगाराम की ज्वेलरी से। शहर की सबसे बड़ी दुकान है गंगाराम की ज्वेलरी। रामानुज अपने दोस्त से दिल की बातें बता रहा था। अचानक उसने विषयान्तर करते हुए कहा, 'छोड़ो भी इन बातों को, तुम अपनी बताओ, कब जा रहे हो घर?'

'आज रात ही नौ बजे की ट्रेन पकड़नी है।' कन्हैयालाल ने बताया। 'कुछ सँदेशा हो तो कह दो, तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा. अरे! सँदेशा क्या? जल्दी से पत्र ही लिख दो हाथों-हाथ लेता जाऊँगा।' यह सब बहुत आत्मीयता से कन्हैयालाल ने कहा था। रामानुज को भी कुछ तसल्ली हुई कि चलो कन्हैया के हाथों कुछ रुपये भेज दूँगा।

कन्हैया गैर भी तो नहीं, परदेश में कोई अपने जिले-तहसील का भी मिल जाय, तो वह सगे जैसा होता है। कन्हैया तो पास ही के गाँव का है।

रात का भोजन करने के बाद कन्हैयालाल अपना सामान बाँधने लगा और रामानुज पत्र लिखने बैठ गया। वह ड्यूटी पर जाने से पहले कन्हैयालाल को स्टेशन तक छोड़ने गया और प्लेटफार्म पर कन्हैया के सामने वाली खिड़की के साथ बोगी के समानान्तर तब तक दौड़ता रहा, जब तक ट्रेन की गति तेज नहीं हो गयी।

वह दौड़ते-दौड़ते बार-बार मित्र को समझा रहा था, 'घर पहुँचते ही मेरे लिए तार कर देना। कमला से मिलकर उसके हाथ में ही पैसा और पत्र देना। पिता जी का हाल चाल लेकर आना। मुन्ने को अच्छे डॉक्टर को दिखा देना, माँ जी को भी। जब लौटना घरवालों से मिलकर ही आना। माता-पिता को हमारा चरणस्पर्श बोलना। मुन्ने को प्यार और कमला से कहना छुट्टी नहीं मिली है, मिलते ही घर आऊँगा। उससे कहना परेशान न हो, कुछ ही दिनों की बात है।'... और न जाने कितनी बातें, कितनी समझाइश, कितनी हिदायतें रामानुज दोस्त को देता चला जा रहा था।

ट्रेन छूटते ही रामानुज अपनी ड्यूटी पर आ गया, किन्तु मन! स्थिर न था। लाख रोकने पर भी उसका मन घर की तरफ भागने लगता। बीमार माँ-बाप, बेटे का दुलारपन, उसे अपनी तरफ खींच रहा था। उसे याद आ रही थी कमला। कमला की सादगी, उसकी प्यार भरी बातें, उसका सामीप्य और स्पर्श सुख। उसे बुला रहे थे खेत-खलिहान, गाँव के हाट-बाजार, अल्हड़ यौवनाएँ, पेंग बढ़ाते गँवई सुकुमार। मुखिया काका के घर में नियमित लगनेवाली चौपाल, चौपाल की चिलम्, आम का बगीचा, बगीचे में चिड़ियों की चहचहाहट। बरेदियों की कुश्ती, साँड़ों की भिड़न्त। शुद्ध ताजी हवा और उसके साथ जीने की आजादी, और यहाँ हर पल हर क्षण नियम-अनुशासन से बँधे हुए हैं। निश्चित समय पर सोना, जगना, तैयार होना, चाय-नाश्ते के बाद व्यायाम पर जाना, फिर ड्यूटी, भोजन और फिर ड्यूटी। ड्यूटी पर ड्यूटी, ड्यूटी ही ड्यूटी...।

रात्रि का दूसरा प्रहर चल रहा था। रामानुज भारत-पाक सीमा पर गश्त करते हुए विचार मग्न था। उसके कन्धे पर बन्दूक, कमर में कारतूसों से भरी बेल्ट, पीठ पर किटबैग सजा हुआ था। खाकी वर्दी में वह चुस्त-दुरुस्त अनुभव करने की बजाय स्वयं को लाचार, बेबस महसूस कर रहा था। उसके अन्य साथी भी ड्यूटी पर तैनात थे।

उनकी निगाहें सीमावर्ती क्षेत्रों में जमी हुई थी, किन्तु रामानुज अपने आप से बेखबर किसी और दुनिया में, सम्भवतः कल्पना लोक में चला गया था। उसका स्थूल शरीर सीमा पर तैनात था, आत्मा और मन घर की चौकसी कर रहे थे।

पहाड़ी क्षेत्र था, दुश्मनों का भय चौबीसों घण्टे बना रहता है। कभी भी विस्फोट हो सकता है। बंकरों में छिपे आतंकवादी कहीं से भी हमला कर सकते है। जान हथेली पर धरे जवान मातृभूमि की अस्मिता की रक्षा के लिए पहरा दे रहे थे। जब ये पहरुए रात भर जागते हैं, तब देश के लाखों-करोड़ों लोग चैन की नींद सोते हैं। रामानुज भी जाग रहा है, सीमा पर पहरा दे रहा है, लेकिन उसका अपनी दिल उसका साथ नहीं दे रहा था। दिल कह रहा था छोड़ दे नौकरी, भाग चल घर, चलकर अपने खेतों में काम कर, अपनों के साथ नमक रोटी खाकर तमाम लोगों की तरह तू भी चैन की नींद सो, यही परमसुख है। ऐसी नौकरी किस काम की, जो सुख-चैन छीन ले, अपनों से दूर कर दे, खुद से दूर कर दे।

भारी मन से रामानुज एक चट्टान पर बैठ गया। बन्दूक किनारे फेंक दी और जेब से तम्बाकू की डिबिया निकाल ली। अकेले में यह डिबिया ही उसका साथ देती है। उसने डिबिया का ढक्कन खोला, बाँयी हथेली पर सुरती गिरायी और उसे उसी तरह बन्द कर दिया। अब डिबिया के नीचे वाले भाग को ऊपर किया। दूसरे ढक्कन को खोला, उसमें से तर्जनी की सहायता से चूना निकाला और ढक्कन उसी तरह बन्द कर दिया। अब धीरे-धीरे

अँगूठे से हथेली पर दबाव बनाते हुए तम्बाकू मलने लगा। जैसे-जैसे हथेली पर अँगूठे का दबाव बढ़ता जाता, वैसे-वैसे उसके माथे पर रेखाएँ उभरती जातीं। कुछ देर तक मलने के बाद उसने तम्बाकू चुटकी में लेकर होठों के अन्दर किया और बुदबुदाया, 'अब नहीं करना फौज की नौकरी।'

उसने मन ही मन यह दृढ़ निश्चय किया ही था कि अचानक उसके कान में किसी के फुसफुसाने की आवाज पड़ी। वह चौंका, सतर्क हुआ और झपटकर बन्दूक फिर उठा ली। उसने अपनी पोजीशन बनायी और दबे पाँव उस आवाज की तरफ बढ़ने लगा। क्षण भर में ही वह जो कुछ सोच रहा था, सब भूल गया। उसे केवल याद रह गया था उसका कर्तव्य, उसकी ड्यूटी।

उसने देखा कि अँधेरे में दो परछाइयाँ आपस में बात कर ही हैं। रामानुज बढ़कर उनके पास की झाड़ी में छिप गया। अब उसको दोनों की बातें स्पष्ट सुनायी देने लगी। पहला कर रहा था 'बॉस का हुक्म है, जेहादियों के जत्थे को आज रात ही बॉर्डर पार करना है। उन्हें किसी भी तरह मंजिल तक पहुँचाना तुम्हारा काम है और मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, बस्स...'

दूसरे ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'तुम समझते क्यों नहीं? आज की रात सम्भव नहीं है, क्योंकि जगह-जगह पर सेना व बी०एस०एफ० के सैनिक तैनात हैं।'

यह बातें सुनकर रामानुज को अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि वे लोग कौन थे। हालाँकि अँधेरा होने के कारण वे पहचान में नही आ रहे थे, फिर भी उनकी बातों से स्पष्ट हो चुका था कि पाकिस्तानी घुसपैठिया अपने मुखबिर से बात कर रहा था। मुखबिर का लिबास स्थानीय कठमुल्लाओं से मिलता जुलता था। रामानुज बिजली की तरह लपका और गद्दारों के भागने से पहले ही उन्हें अपनी रायफल की नोंक के सामने कर लिया। दोनों ने भागने की पूरी कोशिश की, लेकिन रामानुज ने उन्हें हाथ ऊपर करने पर मजबूर कर दिया।

अब तक बटालियन के अन्य जवान भी घेराबन्दी कर चुके थे। उस घुसपैठिए के पास से मशीनगन, भारी मात्रा में कारतूस और विस्फोटक बरामद हुआ। रामानुज ने घुसपैठिए को मुखबिर के साथ गिरफ्तार कर लिया। दुश्मन देश के एक और नापाक इरादे को उसने चकनाचूर तो कर दिया, लेकिन वह जीत की खुशी में वह थोड़ा लापरवाह हो गया था।

ओफ्फो...हो! यह क्या हुआ? रामानुज अपने साथियों के साथ घुसपैठियों को बाँधकर आगे बढ़ा ही था कि साँय से एक गोली उसको चीरती हुई निकल गयी। धरती पर गिरते-गिरते वह जोर से चीखा, 'इन्हें पकड़ो, बढ़ो, इन पर नजर रखो, मैं बस यहीं तक...!

उसके जेब की चिट्ठियाँ वहीं रह गयीं। घर को दिया हुआ वायदा तो वह पूरा नहीं कर सका, लेकिन देश का कर्ज और फर्ज बेबाक कर चुका था। रामानुज अपने पैरों से चलकर घर नहीं लौटा, वह कन्धों के सहारे, बक्से में बन्द होकर अपने घर आया था। बिना छुट्टी लिये।

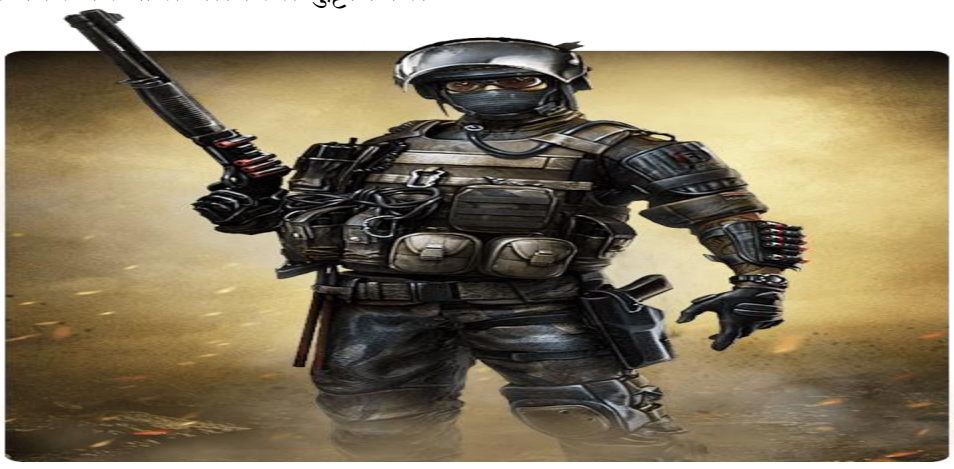

आज फिर से

डॉ. हरिवंशराय बच्चन

आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

है कहाँ वह आग जो मुझको जलाए,
है कहाँ वह ज्वाल पास मेरे आए,

रागिनी, तुम आज दीपक राग गाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

तुम नई आभा नहीं मुझमें भरोगी,
नव विभा में स्नान तुम भी तो करोगी,

आज तुम मुझको जगाकर जगमगाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

मैं तपोमय ज्योति की, पर, प्यास मुझको,
है प्रणय की शक्ति पर विश्वास मुझको,

स्नेह की दो बूँदें भी तो तुम गिराओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

कल तिमिर को भेद मैं आगे बढ़ूँगा,
कल प्रलय की आँधियों से मैं लड़ूँगा,

किन्तु आज मुझको आँचल से बचाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।

ख़तरे में है भारत की सांस्कृतिक अखण्डता और विरासत

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

भारत देश एक बहु-सांस्कृतिक परिदृश्य के साथ बना एक ऐसा राष्ट्र है जो दो महान नदी प्रणालियों, सिंधु तथा गंगा, की घाटियों में विकसित हुई सभ्यता है, यद्यपि हमारी संस्कृति हिमालय की वजह से अति विशिष्ट भौगोलीय क्षेत्र में अवस्थित, जटिल तथा बहुआयामी है, लेकिन किसी भी दृष्टि से अलग-थलग सभ्यता नहीं रही। भारतीय सभ्यता हमेशा से ही स्थिर न होकर विकासोन्मुख एवं गत्यात्मक रही है। भारत में स्थल और समुद्र के रास्ते व्यापारी और उपनिवेशी आए। अधिकांश प्राचीन समय से ही भारत कभी भी विश्व से अलग-थलग नहीं रहा। इसके परिणामस्वरूप, भारत में विविध संस्कृति वाली सभ्यता विकसित होगी जो प्राचीन भारत से आधुनिक भारत तक की अमूर्त कला और सांस्कृतिक परम्पराओं से सहज ही परिलक्षित होता है, चाहे वह गंधर्व कला विद्यालय का बौद्ध नृत्य, जो यूनानियों के द्वारा प्रभावित हुआ था, हो या उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के मंदिरों में विद्यमान अमूर्त सांस्कृतिक विरासत हो।

भारत का इतिहास पाँच हजार से अधिक वर्षों को अपने सांस्कृतिक खंड में समेटे हुए अनेक सभ्यताओं के पोषक के रूप में विश्व के अध्ययन के लिए उपस्थित है। यहाँ के निवासी और उनकी जीवन शैलियाँ, उनके नृत्य और संगीत शैलियाँ, कला और हस्तकला जैसे अन्य अनेक तत्व भारतीय संस्कृति और विरासत के विभिन्न वर्ण हैं, जो देश की राष्ट्रीयता का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. ए. एल. बाशम ने अपने लेख "भारत का सांस्कृतिक इतिहास" में यह उल्लेख किया है कि "जबकि सभ्यता के चार मुख्य उद्गम केंद्र पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ने पर, चीन, भारत, फर्टाइल क्रीसेंट तथा भूमध्य सागरीय प्रदेश, विशेषकर यूनान और रोम हैं, भारत को इसका सर्वाधिक श्रेय जाता है क्योंकि इसने एशिया महादेश के अधिकांश प्रदेशों के सांस्कृतिक जीवन पर अपना गहरा प्रभाव डाला है। इसने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विश्व के अन्य भागों पर भी अपनी संस्कृति की गहरी छाप छोड़ी है।"

संस्कृति से अर्थ होता है कि किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप जैसे जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है।

'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' (करना) से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं 'प्रकृति' (मूल स्थिति), 'संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और 'विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृत' या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो 'विकृत' हो जाता है। अँग्रेजी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' शब्द प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। संक्षेप में, किसी वस्तु को यहाँ तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके। यह ठीक उसी तरह है जैसे संस्कृत भाषा का शब्द 'संस्कृति'।

संस्कृति का शब्दार्थ है - उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज रहन-सहन आचार-विचार नवीन अनुसन्धान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, सभ्यता और संस्कृति का अंग है। सभ्यता (Civilization) से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है जबकि संस्कृति (Culture) से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है।

भारतीय संस्कृति अपनी विशाल भौगोलिक स्थिति के समान अलग-अलग है। यहाँ के लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, अलग-अलग तरह के कपड़े पहनते हैं, भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं, अलग-अलग भोजन करते हैं किन्तु उनका स्वभाव एक जैसा होता है। तो चाहे यह कोई खुशी का अवसर हो या कोई दुख का क्षण, लोग पूरे दिल से इसमें भाग लेते हैं, एक साथ खुशी या दर्द का अनुभव करते हैं। एक त्यौहार या एक आयोजन किसी घर या परिवार के लिए सीमित नहीं है। पूरा समुदाय या आस-पड़ोसी एक अवसर पर खुशियाँ मनाने में शामिल होता है, इसी प्रकार एक भारतीय विवाह मेल-जोल का आयोजन है, जिसमें न केवल वर और वधु बल्कि दो परिवारों का भी संगम होता है। चाहे उनकी संस्कृति या धर्म का मामला हो। इसी प्रकार दुख में भी पड़ोसी और मित्र उस दर्द को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वर्तमान समय में भारत की वैश्विक छवि एक उभरते हुए और प्रगतिशील राष्ट्र की है। सच ही है, भारत में सभी क्षेत्रों में कई सीमाओं को हाल के वर्षों में पार किया है, जैसे कि वाणिज्य, प्रौद्योगिकी और विकास आदि, और इसके साथ ही उसने अपनी अन्य रचनात्मक बौद्धिकता को उपेक्षित भी नहीं किया है। हमारे राष्ट्र ने विश्व को विज्ञान दिया है, जिसका निरंतर अभ्यास भारत में अनंतकाल से किया जाता है। आयुर्वेद पूरी तरह से जड़ी बूटियों और प्राकृतिक खरपतवार से बनी दवाओं का एक विशिष्ट रूप है जो दुनिया की किसी भी बीमारी का इलाज कर सकती हैं। आयुर्वेद का उल्लेख प्राचीन भारत के एक ग्रंथ रामायण में भी किया गया है। और आज भी दवाओं की पश्चिमी संकल्पना जब अपने चरम पर पहुँच गई है, ऐसे लोग हैं जो बहु प्रकार की विशेषताओं के लिए इलाज की वैकल्पिक विधियों की तलाश में हैं।

भारतीय नागरिकों की सुंदरता उनकी सहनशीलता, लेने और देने की भावना तथा उन संस्कृतियों के मिश्रण में निहित है जिसकी तुलना एक ऐसे उद्यान से की जा सकती है जहाँ कई रंगों और वर्णों के फूल है, जबकि उनका अपना अस्तित्व बना हुआ है और वे भारत रूपी उद्यान में भाईचारा और सुंदरता बिखेरते हैं।

इन सब गुणों के बावजूद भी वर्तमान दौर में भारत में अपनी ही संस्कृति को विखंडित और विलोपित करने की कवायदें आरम्भ हो चुकी है, जिसके दुष्परिणाम स्वरुप भारत केवल एक ऐसा भूमि का टुकड़ा बच जाएगा जिसके सतही तल पर तो अधिकार हमारा होगा किन्तु मानसिक स्तर पर उस पर आधिपत्य पाश्चात्य के राष्ट्रों का होगा। इस विकराल समस्या को हम भारत की सांस्कृतिक अखण्डता पर मंडरा रहे खतरे के तौर पर स्वीकार करना चाहिए और उसके उपचार हेतु शीघ्रातिशीघ्र प्रयास करना प्रारम्भ करना होगा।

सांस्कृतिक अखण्डता को बनाये रखने के लिए प्राथमिक तौर पर हर भारतवंशी में राष्ट्रप्रेम की जागृति लाना होगी। 'पहले राष्ट्र' की मूलभावना को रगों में दौड़ने के लिए भारतीय भाषाओं को संरक्षित करना परम आवश्यक है। जब भारत आजाद होने वाला था उसके पहले १८ जुलाई १९४७ को इंग्लैंड की संसद में 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७' पास हुआ, यदि उसे पढ़ा जाये और उसके बाद लार्ड मैकाले और एटमी के संवादों

की तरफ दृष्टि डाली जाए तो हमें यह ज्ञात होगा कि भारत को आजादी शर्तों और अनुबंध के आधार पर दी गई है, और एटमी के अनुसार तो भारत को अँग्रेजो से आज़ाद करके अँग्रेजियत का गुलाम बनाया गया हैं। हमें इसको तोड़ कर भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना होगा, बाजार पर जिस अँग्रेजियत का कब्ज़ा है उसे हटा कर भारतीयता का साम्राज्य स्थापित करना होगा। बच्चों के बस्ते से गायब हुई नैतिक शिक्षा की किताब भी भारत की सांस्कृतिक अखण्डता को बचाने में अग्रणी थी, उसे वापस अनिवार्य शिक्षा की धारा में लाना होगा।

इसी के साथ हमें सांप्रदायिक सौहार्द्र की स्थापना करनी होगी, क्योंकि भारत में धर्म और जाति के नाम पर झगड़े तो उन हथियारों के व्यापारियों की कारस्तानी और मंशा है जिनका व्यापार ही हथियार बेचना है.

हमें हमारे त्यौहारों पर भी चाइनीज भागीदारी को समाप्त करना होगा, आज हमारे त्योंहारों की समझ हमसे ज्यादा चाइना की है क्योंकि वह एक व्यापारी देश है जो अपना माल विश्व के दूसरे बड़े बाजार के तौर पर स्थापित भारत में खपाना चाहता है। महात्मा गाँधी ने आज़ादी के पहले विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन इसलिए ही चलाया था क्योंकि हम ही हमारी गाढ़ी कमाई से हमारी सांस्कृतिक हत्या के लिए साधन जुटाने हेतु उन्हें पोषित करते है।

इन्ही सब महत्वपूर्ण उपायों से भारत की सांस्कृतिक विरासत को बचाया जा सकता है, वर्ना हमारे पास शेष हाथ मलने के अतिरिक्त कुछ न बचेगा जब राष्ट्र ही नहीं बचेगा।

हिन्दी पर मुक्तक

मनोज कुमार शुक्ल "मनोज"

हिन्दुस्तान के दिल में, धड़कती आज ये हिन्दी।
विश्व भी जानता है अब, यहाँ की भाषा है हिन्दी।।
सियासत में उलझ कर वह, सिसकती थी जमाने से।
आज भारत के माथे पर, लगी खुश हो रही हिन्दी।।

मात्र भाषा नहीं है यह, हमारे देश की हिन्दी ।
हमारी अस्मिता से है जुड़ी, जन जन की ये हिन्दी ।।
स्वतंत्रता की लड़ाई में, देश को एक जुट रक्खा।
प्रगति के भाल पर अब है, दमकती आज ये हिन्दी ।

हिन्दुस्ताँ बदलता जा रहा, अब गौर से सुन लो।
राष्ट्रभाषा बनेगी यह, अरे अँग्रेजदा सुन लो।।
गुलामी की ही चादर ओढ़कर, जो मौज करते थे।
हिन्दी का नया युग अब, दिखाई दे रहा सुन लो।।

कनाडा की धरा पर हो रहा, जो आज आयोजन ।
हमारी सभ्यता संस्कृति और हिन्दी का समायोजन।।
तुम्हें भारत की खुशबू ही, सुहाती है गुलिस्तां में।
तभी तो इस धरा में कर, रहे ऐसे ही आयोजन ।।

कोख

डॉ. सुमति दुबे

मिसेज़ चंद्रा सोनी बहुत परेशान हो गई हैं. कारण यह कि जहाँ भी किराये का मकान लो दो साल पूरे भी नहीं होते कि किराया बढाओ नहीं तो घर छोड़ो. सुनते-सुनते ज़िन्दगी नरक लगने लगी है. हर दूसरे साल घर बदलने की चिंता, मकान मालिक के साथ बनाए अच्छे सम्बन्धों पर पानी फेर देता है. जिस मकान मालिक का परिवार ख़ुश-मिज़ाज़ और परम हितैषी लगता रहा है वही गाल फुला लेगा और येन-केन-प्रकारेण आपकी जड़ें काटने पर उतारू हो जायेगा. तीन छोटे बच्चे और पति अपने काम में मशगूल रहने वाले. घर में साथ रहने वाले मकान मालिक की उपेक्षा और संकेत - ऐसी स्थिति खल रही थी. तबादले वाली नौकरी के चलते बनारस में हमेशा के लिए रहना सम्भव नहीं कि अपना मकान ही बनवा लिया जाए. यहाँ जो भी मकान अपनी आँट, बाँट का मिलता है तो गली में ही. पूरी गली नं. १ की दुर्गन्ध से भरी लगती है. कहाँ जाएँ? क्या करें? सड़क के एक तरफ के घरों में बाढ़ का प्रकोप तो दूसरी ओर मंदिर और गलियाँ. मकान बदलना पड़ ही जाएगा. ईश्वर की अनुकम्पा हुई. दूसरा घर अधिक बड़ा और उससे भी कम किराए में मिल गया. बस! बीस कदम दुर्गन्ध का झोंका पार करते ही गंगा जी की तरफ से आने वाली शीतल हवा.

सोनी ने कुढ़न के मारे मकान मालिक को भनक तक नहीं लगने दी. सामान परदे में लपेट-लपेटकर विभाग के ट्रक पर जब रखा जाने लगा तो मकान मालिक का आश्चर्य के मारे बुरा हाल. बताया नहीं! आश्चर्य से बोलीं, “भनक तक नहीं लगने दी!”

हाँ! नहीं लगने दी. सम्बन्धों की मिठास बनी रहे उसके लिए यह ज़रूरी था कि मकान जल्दी से जल्दी बदल लिया जाए. मकान बहुत अच्छा मिल गया था. दिलाया भी विभाग से समकक्ष अधिकारी ने. दो निवाड़ की पलंगें, एक खटोला, दो अलमारियाँ, सोफा, डाइनिंग टेबल, फैन, कूलर, किचन के बर्तन. सामान सजाने में पूरी मदद भी मिल गई. बच्चों का स्कूल और पास हो गया. स्कूटर के लिए इतनी दूरी ज़्यादा मतलब भी कहाँ रखती है.

साथी अनुपम खरे का पूरा परिवार, माँ, भईया-भाभी, भतीजे-भतीजियाँ, पत्नी सब मिलनसार. आनंद आ गया. पहले के मकान मालिक भी ये मोज़ैक के फ़र्श वाला घर देख गए. थोडा और अन्दर जाकर हमें और बड़ा घर मिल रहा था बस उसमें मोज़ैक की फ़र्श नहीं थी. बनारस में वैसे ही बाल पहेली के रास्ता ढूँढो वाले चित्र जैसी ही गलियों का जाल है. आगे बढ़ते गए तो सामने गंगा नदी के घाट पर खड़े मिल सकते हो. यहाँ सामने पीपल का छायादार पेड़, खुला मैदान, गली के मुहाने पर राशन और सब्जी की दुकानें, अच्छी काम करने वाली बाई.

भरे-पूरे परिवार का मज़ा, साथ ही काम्या कुछ-न-कुछ बनाकर दे ही जाती थी. चन्द्रा को इस कर्टसी से छूट थी क्योंकि उनके एक छोटी बेटी थी. मेल-मिलाप की क़ीमत भी अदा करनी पड़ी. बेटों को आँगन में लगे नल पर नहाने को कह दो पर आपको अपने हिस्से के बाथरूम में नहाने के लिए भी ताक में लगे रहना पड़े तो! घुस गए तो अटैच्ड रूम से कोई दरवाज़ा भड़भड़ाने लगता. हरदम डर लगा रहता कि आँकड़ा कहीं उछल न जाए. सवाल यह है कि नाश्ते-खाने की कृतज्ञता भुला दें कि मानें. तो चंद्रा का सिद्धांत बना, “जो मेरा है वो मेरा है. उसमें कोई हिस्सेदार नहीं.” थोड़ी भी खटास नहीं पड़ी. बात भी ठीक है, एक ही विभाग के हैं वही काम करें जिससे व्यवहार लम्बा चले. चंद्रा ने यह समस्या हल कर ली.

अनुपम खरे और पत्नी काम्या सुन्दर, गोरे हैं. समस्या यही कि जब एक ही आँगन के चारों ओर कमरे हों तो आँगन का बँटवारा कैसे हो? उनका बड़ा परिवार ठहरा. पूरे बरामदे में चहलकदमी करके पैरों की छाप भर देते. पार्टीशन के लिए एक बैंच रख दी तो उसी पर वे लोग खाने-पीने लगे. जहाँ मन होता बैंच उठा ले जाते. कितना कहा जाए. चंद्रा के तीन बच्चे विवेक, रमण, बेटी कुसुम्भी. खरे के बच्चों रेशू और मिनी से दो-तीन साल छोटे हैं.

सभी बच्चे खिलंदड. घर-आँगन, बरामदा, गलियारा बच्चों की दौड़-भाग से गुलज़ार रहता. बच्चों के स्कूल के चलते दोनों माताएँ सवेरे पाँच बजे ही उठ जाती हैं. मौन अभिवादन हो जाता है. सुबह-सुबह यह कैसी चक-चक? खरे बहुत गुस्से में हैं. पत्नी कम्या को दबी-दबी आवाज़ में कुछ धमका-सा रहे हैं साथ ही खाली जग पकड़कर मन का क्षोभ व्यक्त हो रहा है. जग कूद-फाँदकर, चारपाई के पावे से टिककर सुस्ता रहा था. उसे भी अंदाज़ा है कि अभी एक लात और लगेगी. वहीं दूर खड़े मित्र अखण्ड सिंह टूथ-ब्रश मुँह में घुसेड़े दाँतों को चमकाने में लगे हैं. काम्या की सास पीठ पीछे की बातें ध्यान से सुन रही हैं. धीरे से बोलीं, "लल्ला! तुम अब इस घर में अकेले ही नहीं हो. एक और परिवार भी है. जाओ! अन्दर कमरे में लड़ो."

काम्या दौड़कर रसोई में घुस गई. सबेरे-सबेरे कुकर की सीटी छूँ-छूँ बजने लगी. सफ़ेद चने के उबलने की महक घर-भर में फैलने लगी.

काम्या सास से बोलीं, "अम्माँ! बिना भीगा चना गल ही नहीं रहा है. छिलके उतर गए पर चना जैसे पत्थर. ये ठाकुर जब भी आता है तब इनका दिमाग खराब हो जाता है. जग ऐसे पटक रहे थे जैसे मेरा सिर ही फोड़ रहे हों." कहते-कहते काम्या के होठ फड़कने लगे और बड़ी-बड़ी आँखें लाल हो आईं.

सास बोलीं, "ये मर्द घर के ही मवाली होते हैं. ऑफिस में साहेब बिल्ली तो ये चूहे. दुम दबाए इधर-उधर ऊँगली के इशारे पर दौड़ा करते हैं. जाने दे. मत कुछ कह पगले को. दो दिन ठाकुर को झेलना पड़ेगा ही. जब चला जायेगा तो सब शांत हो जायेगा."

काम्या नाईटी पहने घर का नाश्ता बनाकर ही नहाती हैं. १२ साल की भतीजी और २ भतीजे भी अखण्ड का आना पसंद नहीं करते हैं. चाचा किसी की सुनें तब तो. कमाकर खिलते तो वही हैं. राशन गाँव से आता ज़रूर है लेकिन फ़ीस, कपड़ा आदि तो वही देते हैं.

अक्टूबर की नवरात्रि में मैं चंद्रा दीदी के पास ३-४ दिन के लिए गई. खरे, सिंह और मेरे पति चाय-नाश्ते का आनंद इन दिनों साथ ही उठा रहे हैं. काम्या ने जलेबियाँ और पोहा बना कर बैठक में भेज दिया है. कुछ दीदी के पास भी भेज दिया है. चंद्रा वही बच्चों को टिफिन में दे रही है. मैं तो ब्रेड खा चुकी हूँ. पति के कमरे में आते ही चंद्रा दीदी ने कहा, "अच्छा लगता है क्या? नाश्ता भी वहीं का, रात का खाना भी वहीं का. तुम भी खरे और सिंह को रात के खाने पर बुला लो, बहन है ही ये अपनी स्पेशलटी दही-बड़े और पाव-भाजी बना देगी, कुछ होटल से मँगा लेंगे."

झट जवाब मिला, "खिलाने दो खरे को. ज़्यादा चक्कर न पालो. परेशान हो जाओगी. अभी सामान भी पूरा खुला नहीं है. एक बार सब मिलकर होटल चलेंगे, व्यवहार पूरा हो जायेगा."

दीदी संतुष्ट हो गईं. इससे अच्छी व्यवस्था कुछ हो ही नहीं सकती थी. खरे की माँ बच्चों को सँभाल लेंगी. लौटते समय बच्चों के लिए आइसक्रीम ब्रिक लेते आएँगे.

दीदी ने अपनी किटी मेरे स्वागत में पहले ही कर ली ताकि नए-नए गेम मैं करा दूँ और नाश्ते में मैं मदद कर दूँगी. खरे, मेरे पति और अखण्ड एक साथ इलाहाबाद में पढ़े और एक साथ ही नौकरी ज्वाइन की. अखण्ड

एक साल सीनियर थे और मैथ में पीएच.डी. खरे के साथ होस्टल में भी रहे. जैसे ही सोनी ऑफिस से लौटे काम्या जी दीदी के कमरे में दौड़ती हुई घुसीं और फफक-फफक कर रोने लगीं. खरे अभी ऑफिस से नहीं लौटे थे. जीजा को कपडे बदलने हैं और वे उठ ही नहीं रही हैं. दीदी ने बैठक में कपडे बदलने का इशारा किया तो वहाँ बच्चे कूद-फाँद कर रहे थे. बहरहाल बाथरूम में जाकर कपड़ा बदला. साथी की पत्नी को दुखी देख कर किचन में जाकर चाय ख़ुद ही बना लाने के विचार से गए तो वहाँ काम करने वाली बाई पाटा धोते मिली. क्या करें क्या न करें? अखबार लेकर बच्चों के बीच में बैठने चले गए.

दीदी का कलेजा मुँह को आ रहा था. ये क्या छछंद है? कुछ समझ नहीं पा रही थीं. काम्या दीदी की पीठ पर हाथ फेरा तो वे सुबक-सुबक कर बोल पड़ीं, "भाभी जी इन्हें समझाइये. इनकी आदत ठीक नहीं हैं. ये अपने उस दोस्त के साथ रात में सोते हैं. मुझे भी उसी कमरे में जमीन पर सोने को कहते हैं. मुझसे बर्दाश्त नहीं होता है. घर में सभी जानते हैं लेकिन कोई टोकता कोई नहीं है. छोटे बच्चों तक को माहौल का आभास हो जाता है."

सुनकर हम दोनों का मुँह खुला का खुला रह गया. दीदी बोलीं, "तभी तीनों कमरे से साथ ही निकलते देखती थी. मैंने इस पर ध्यान इसलिए नहीं दिया कि बच्चों वाले घर में माँ को बड़े सबेरे ही उठना पड़ता है. उन्हें जगाने और तैयार करने में सभी जग जाते हैं. पर इस व्यक्ति की ये करतूतें!"

मैं भी जासूसी पर उतर आई कल का ही दिन है. परसों अखण्ड चला जायेगा. आश्चर्य हो रहा था कि यह बेहूदी बात कैसे माँ को बर्दाश्त हो रही थी! माँ से मैंने पूछा, "अम्माँ! सुना है अखण्ड कल जा रहे हैं?"

अम्माँ ने दसों उँगलियाँ फोड़कर कहा, "जाय बम पुलिस के टैंक में. जीना मुश्किल कर दिया है."

मैंने कहा, "क्या बात है माँजी?"

अम्माँ, "बाल बच्चे वाली है! तुझे सब सही लग रहा है? ये सब देखने के पहले मैं मर क्यों नहीं गई?"

मेरे पति भगीरथकान्त रेलवे में इंजीनियर हैं उन्होंने जब यह बात सुनी तो बात की तह तक जाने की ठान ली. बोले, "मेरा क्या? मैं कौन यहाँ बसने आया हूँ? या ये खरे ही मेरा बॉस है?"

रात को देर तक चलती ताश और पीने-पिलाने के दौर के बीच कुछ ज्यादा ही चढ़ जाने का नाटक करते हुए भगीरथ जी ने गाना शुरू किया, 'ये दोस्ती हम नहीं छोड़ेंगे, सॉरी तोड़ेंगे. अमा अखण्ड! याद नहीं आ रहा है कि तोड़ेंगे है या छोड़ेंगे? क्या है तुम दोनों के बीच में वो ही!"

अखण्ड गुर्राए, "न ये, न वो बल्कि तेरा सर फोड़ेंगे."

खरे ने हलके-से स्पर्श किया और लगा कि जैसे गरम हवा निकल गई. फिर बोले, "अरे भगीरथ! तू चुप ही रह! कल ये भी चला जा रहा है और तू भी तो जा रहा है. छोड़ न इन बातों को. ये अखण्ड मेरे बचपन का दोस्त है. इसकी अमीरी में मेरी गरीबी दूर हो गई. इसी के कपडे पहना हूँ. इसी ने मेरी फ़ीस भरी है. यह तन, प्राण सब इसी का तो है. पुरी यूनिवर्सिटी में यदि कोई मुझको हाथ भी लगा देता तो उसे मार-मार कर अधमरा कर डालता. खून करने पर उतारू हो जाता. इसी के साथ सोया-जगा हूँ. इतना बड़ा परिवार है. हर कमरे में तीन-चार लोग चिकर-चिकर लगाए रहते हैं. तो यदि इसे मैं अपने कमरे में ही सुला लेता हूँ तो कौन-सा आसमान टूट पड़ेगा! मेरे इतनी शारीरिक ताकत तो है नहीं कि कोई इसे कुछ कहे जैसे तू! तो मैं उसका मुँह तोड़ दूँ."

भगीरथ की हैवी बॉडी की माँस-पेशियाँ उभर आईं और दाँत पर दाँत बैठ गए. खरे का लिहाज़ था वरना चढ़ बैठते. फिर दोस्त होकर इतना बोलना तो चलता है. सोनी ने पकौड़ी की प्लेट भगीरथ जी को

पकड़ाई और बोले, "तुम काम से काम रखो! ये बनारस है. ये बिहारी गालियों पर उतर आया तो अनगिनत हो जायेंगी." कह कर आँख मारी और अखण्ड फूल-पचककर शांत हो गए.

ताश की बाजी बड़ी चतुराई पर आकर रुकी थी. भगीरथ ब्लाइंड खेल रहे थे. दोस्त उन्हें बेवकूफ समझ रहे थे. भगीरथ फिर उखड़ गए बोले, "मैं और खरे दोस्त नहीं हैं क्या? उतारन पहनाने का इतना एहसान! अब तो रुपये की समस्या नहीं है न? मार दे रुपये वापस इसके मुँह पर. हमपियाला, हमनिवाला हों तो इसका मतलब यह तो नहीं कि बीबी तुम्हारे एहसान की भरपाई अपमान का घूँट पीकर करे. भगवन के घर में देर है अंधेर नहीं."

अखण्ड 'चोप्प' कहकर ओपन बोलकर भगीरथ जी द्वारा रुपया सरपेटना देख रहे थे. आजतक किसी ने उन दोनों पर ऊँगली नहीं उठाई थी. लेकिन इल्लती तो इल्लती चला गया. इत्मीनान यही था कि उसके कृत्य पर किसी ने ऊँगली तो उठाई. खरे ठहरे मर्द, उन्हें कौन प्रताड़ित कर सकता था.

माँ बोली, "क्यों थुक्का फ़जीहत करवा रहा है लल्ला!"

खरे बोले, "माँ रहती है तो रह वरना लुग्गा लत्ता उठा और गाँव चली जा. पढाई में पैसे-पैसे को तरसा दिया अब माँ का तेवर दिखा रही है. जा सोजा!"

हम भी दीदी के यहाँ से वापस आ गए. दीदी से बात होती रहती है. खबर मिली कि अखण्ड को शादी में २ करोड़ नगद मिला है. पत्नी १०वाँ पास. न रूप-रंग की, न किसी ढंग की. बच्चे कैसे होते भला. पुष्पबंध्या है. बात तो बिगड़ ही जाती यदि पत्नी ने अपने मन की न कर ली होती. उधर खरे भाभी ने घर में ही सेंध-मारी कर ली. जिठानी का लम्बी बीमारी के बाद इंतकाल हो गया. सास तो तब भी चुप थीं अब भी चुप हैं. का करे बेचारी!

अखण्ड रुपये में खेल रहे हैं पर अब दोस्त बदल लिए हैं. खरे से बात तक नहीं करते. बहुत प्यार दिया अब नहीं. नाराज़गी यही थी कि भगीरथ को उसने जुतियाया क्यों नहीं. मैं तो उसके लिए सबसे दुश्मनी मोल ले लेता था और ये जनखा किसी काम का नहीं.

अब घर में काम्या की ही चलती है. बेटी पढ़कर विदेश चली गई. इंडिया में इंडिया वाले मौज करें न. चंद्रा दीदी कह रही थीं, "अरे अनामिका! बाहर की दुर्गन्ध तो नाक से पता चलती है ये गन्दगी तो खानदान में जाती है. किसे बहुत बुरा कहें किसे कम बुरा? बुरे तो वे सभी थे. वो तो भला हो जो बनारस से तबादला हो गया और लखनऊ आ गई. ना बाबा! अब घर किसी से शेयर नहीं करूँगी. आना तो उन चारों की चर्चा भी मत चलाना."

मैंने पूछ लिया, "अम्माँ कहाँ हैं?"

तो बोलीं, "अम्माँ सारे राज़ सीने में समाये ऊपर चली गईं. बताती थीं कि इस अनुपमवा के लिए कहाँ-कहाँ चादर चढ़ाने नहीं गईं. एक बार जिस दर से बेटा मिला वहीं से बाकी भी मिले. माँ की कोख कुम्हार का आँवाँ है. सब दोख आँच में भसम हो जाता है. जिसे जो समझना हो समझे. गरजू के लिए कोई भी बात शरम की बात नहीं. जाते-जाते अपनी चादर बढ़ाने की प्रथा निभाने को कह गई हैं."

काम्या प्रथा निभाएँगी क्योंकि कमी तो अनुपम की ही है. पहले कम नहीं सहा है. अब गिन-गिन के बदले लेंगी. खरे से कहती हैं, "मेरी शर्तों पर अब जीना होगा. जो भी हो ये बदला है और बदला लेने में कुटिल होना ही पड़ता है. पहले हम तुमको झेले, अब तुम हमें झेलो."

दो पैर

सुमित्रा केजरीवाल

मृत्यु की छाया आती है और जाती है
वैराग्य आता है और जाता है
श्मशान में जलती हुई चिता के दो पैर
मन में बार-बार कहते हैं.

गंगा के तट पर खड़ी मैं सब
देख रही हूँ
यह पैर कभी कितना सुंदर नृत्य
किये होंगे.

मृत्यु की छाया का आभास
भय से अपनी आत्मा को पहचानने का प्रयास
माया की आड़ में कितना जीना पड़ेगा
सत्य के स्वरूप को समझना होगा
सब कुछ धुँधला-धुँधला सा दीख रहा है
करुणा से भरा मन अस्थिर हो उठता है
इस मन को कैसे बाँधूँ.

मरने तक दुःख ही दुःख है
उस पर कैसे विजय प्राप्त करूँ?
यह वेदना ही सत्य है
यह वेदना ही तप है
इससे प्यार करना होगा
उस अज्ञात शक्ति से लौ लगाकर
जीवन के रहस्य को समझना होगा.

नीरज के काव्य में मानववाद

गिरिराजशरण अग्रवाल

नीरज हिंदी-कविता के सर्वाधिक विवादास्पद कवि रहे हैं। कोई उन्हें निराश मृत्युवादी कहता है तो कोई उनको अश्वघोष का नवीन संस्करण मानने को तत्पर है, लेकिन जिसने भी नीरज के अंतस् में झाँकने का प्रयत्न किया है वह सुलभता से यह जान सकता है कि उनका कवि मूलतः मानव-प्रेमी है, उनका मानव-प्रेम उनकी प्रत्येक कविता में स्पष्ट हुआ है चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर लिखे गए प्रेमगीत हों या करुणापूरित गीत, चाहें भक्तिपरक गीत हों या दार्शनिक, सभी में उनका मानव-प्रेम मुखर हुआ है। नीरज की पाती में संगृहीत अनेक पातियाँ जो नितांत व्यक्तिगत प्रेम से प्रारम्भ होती हैं अक्सर मानव-प्रेम पर जाकर समाप्त होती हैं। आज की रात तुझे आ़खिरी ख़त लिख दूँ, शाम का वक़्त है, आज ही तेरा जन्मदिन, लिखना चाहूँ भी तुझे ख़त तो बता कैसे लिखूँ आदि पातियों का अर्थ व्यक्ति है और इति मानव, उनकी आस्था मानव-प्रेम में इतनी प्रगाढ़ है कि घृणा, द्वेष, निन्दा के वात्याचक्र में खड़े रहकर भी कहते हैं — जितना ज्यादा बाँट सको तुम बाँटो अपने प्यार को|

नीरज का मानववाद एक ऐसा भवन है, जहाँ पर ठहरने के लिए वर्ग, धर्म, जाति, देश का कोई बंधन नहीं है। वह दीवाने-आम है, जिसमें प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधि बिना किसी संकोच के प्रवेश कर सकता है और सामने खड़ा होकर अपनी बात कह सकता है। वस्तुतः मानव-प्रेम ही एक बड़ा सत्य है कवि के समक्ष। नीरज के कवि का सबसे बड़ा धर्म और ईमान मानव-प्रेम है, इसलिए समस्त विश्व में उनके लिए कोई पराया नहीं -

कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है
मैं न बँधा हूँ देशकाल की जंग लगी जंजीरों में
मैं न खड़ा जाति-पाति की ऊँची-नीची भीड़ में|

इसीलिए उनका गीत भी किसी एक व्यक्ति का गीत नहीं, वह उन सबके मन का उद्गार है, जिनका इस संसार में कोई नहीं, जिसका स्वर अनसुना कर दिया जाता है, उनके स्वर को उन्होंने स्वर दिया है –

मैं उन सबका हूँ कि नहीं कोई जिनका संसार में,
एक नहीं दो नहीं हजारों साझी मेरे प्यार में|
किसी एक टूटे स्वर से ही मुखर न मेरी श्वास है,
लाखों सिसक रहे गीतों के क्रंदन हाहाकार में|

कवि ने सदैव मानव को विकास की ओर अग्रसर होने की ही कामना की है, इस विकास के मार्ग में आई बाधाओं से उनका तीव्र विरोध है, मानव-मानव के मध्य वह किसी दीवार या पर्दे को सहन नहीं कर सकते और इसीलिए जीवन की अकृत्रिमता के आड़े आने पर उन्होंने क्रांति को भी स्वीकार किया है, 'भूखी धरती अब भूख मिटाने आती हैं' में उनके कवि का यही रूप दिखाई देता है –

हैं काँप रही मंदिर-मस्जिद की दीवारें
गीता क़ुरान के अर्थ बदलते जाते हैं
ढहते जाते हैं दुर्ग द्वार, मकबरे, महल
तख़्तों पर इस्पाती बादल मँडराते हैं|
अँगड़ाई लेकर जाग रहा इंसान नया
ज़िंदगी क़ब्र पर बैठी बीन बजाती है

हो सावधान, सँभलो ओ ताज-तख़्त वालों
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।

कवि का मानव-प्रेम किसी प्रकार की सीमाओं में बँधा नहीं है, कवि विश्व के खुले प्रांगण में खड़ा है, विश्व का हर भटकता पीड़ित व्यक्ति उसकी सहानुभूति का अधिकारी हो गया है -

सूनी-सूनी ज़िन्दगी की राह है,
भटकी-भटकी हर नज़र निगाह है,
राह को सँवार दो, निगाह को निखार दो
आदमी हो कि तुम उठो आदमी को प्यार दो, दुलार दो
रोते हुए आँसुओं की आरती उतार दो।

विश्व-प्रेम ने कवि को असीम बना दिया है। समष्टिगत भावनाओं का प्रदुर्भाव इसी कारण हुआ कवि में। वह समस्त सृष्टि को अपने में लीन मानता है। उसका विचार है कि किसी अन्य को दिया गया कष्ट भी अपने लिए ही होगा, इसलिए किसी को भी सताना उचित नहीं। प्रत्येक कण को अपने प्यार का वरदान देना आवश्यक है -

मैं सिखाता हूँ कि जिओ औ' जीने दो संसार को,
जितना ज्यादा बाँट सको तुम बाँटो अपने प्यार को,
हँसो इस तरह, हँसे तुम्हारे साथ दलित यह धूल भी,
चलो इस तरह कुचल न जाए, पग से कोई शूल भी,
सुख, न तुम्हारा केवल, जग का भी उसमें भाग है,
फूल डाल का पीछे, पहले उपवन का शृंगार है।

कवि का मानव-प्रेम ही उसके जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है, इस शक्ति से वह जग के अनेक आकर्षणों से अपने को बचा सकता है, कवि के शब्दों में –

आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ--मेरी कमजोरी है और शक्ति भी, कमजोरी इसलिए कि घृणा और द्वेष से भरे संसार में मानव-प्रेम के गीत गाना अपनी पराजय की कहानी कहना है, पर शक्ति इसलिए है कि मेरे इस मानव-प्रेम ने ही मेरे आसपास बनी हुई धर्म-कर्म, जाति-पाँति आदि की दीवारों को ढहा दिया है और मुझे वादों के भीषण झंझावात में पथभ्रष्ट नहीं होने दिया है। इसलिए यह मेरी शक्ति है।

यही कारण है कि कवि नीरज के काव्य में अन्य सब विधि-विधानों, रीतियों-नीतियों से ऊपर मानव की प्रतिष्ठा है, मानव जो हर झोंपड़ी, हर खलियान, हर खेत, हर बाग, हर दुकान, हर मकान में है, स्वर्ग के कल्पित सुख-सौंदर्य से अधिक वास्तव है। कवि को इसीलिए मानव और उसका हर निर्माण अत्यधिक आकर्षित करता है-

कहीं रहें कैसे भी मुझको प्यारा यह इंसान है,
मुझको अपनी मानवता पर बहुत-बहुत अभिमान है।
अरे नहीं देवत्व, मुझे तो भाता है मनुजत्व ही,
और छोड़कर प्यार नहीं स्वीकार सकल अमरत्व भी.
मुझे सुनाओ न तुम स्वर्ग-सुख की सुकुमार कहानियाँ,
मेरी धरती सौ-सौ स्वर्गों से ज्यादा सुकुमार है।

सभी कर्मकांडों से ऊपर मानव की प्रतिष्ठा है कवि के काव्य में -

जाति-पाँति से बड़ा धर्म है,
धर्म ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्मकांड से बड़ा मर्म है

मगर सभी से बड़ा यहाँ यह छोटा-सा इंसान है,
और अगर वह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।

कवि ने साहित्य के लिए मानव को ही सबसे बड़ा सत्य माना है। 'दर्द दिया है' के दृष्टिकोण में उन्होंने लिखा है - 'मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है। जो साहित्य मनुष्य के दुख में साझीदार नहीं, उससे मेरा विरोध है। मैं अपनी कविता द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ। वही मेरी यात्रा का आदि है और वही अंत।'

इस प्रकार नीरज की कविता का अर्थ भी मनुष्य है और इति भी, वही उनके निकट मानवता का सबसे बड़ा प्रमाण है, इसीलिए कवि कहता है –

पर वही अपराध मैं हर बार करता हूँ,
आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ।

दिल कोमल होता है

ओम प्रकाश विश्नोई 'सुधाकर'

दिल कोमल होता है, दिल पिघल जाता है।
मुहब्बत की तस्वीर, उभार कर लाता है॥
दिल दरिया बन जाता है, दिल ज़रिया बन जाता है।
दिल गर मचल जाता है, तो तराना बन जाता है॥
प्यार पनपने लगता है, दिल नाचने लगता है।
प्यार में रंग आता है, मन में उमंग भर जाता है॥
आँखों में ख़ुमार भर जाता है, मन मचलने लगता है।
मंजिल मिल जाती है 'सुधाकर' ख़ज़ाना मिल जाता है॥

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

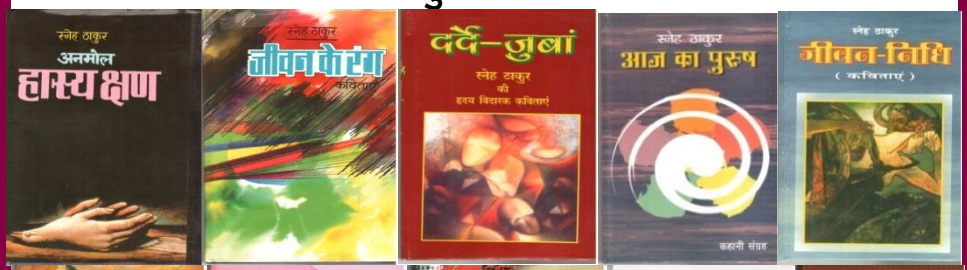

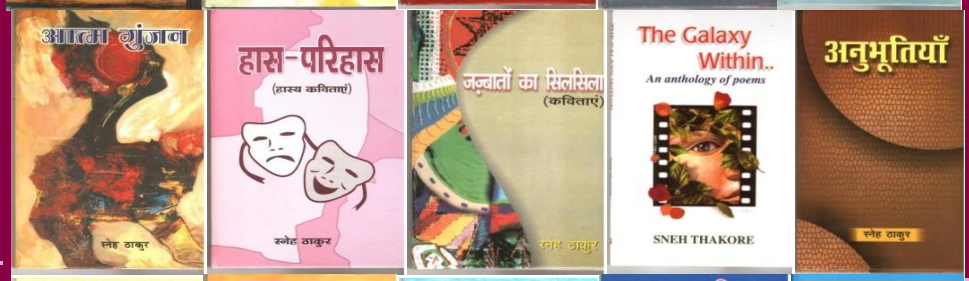

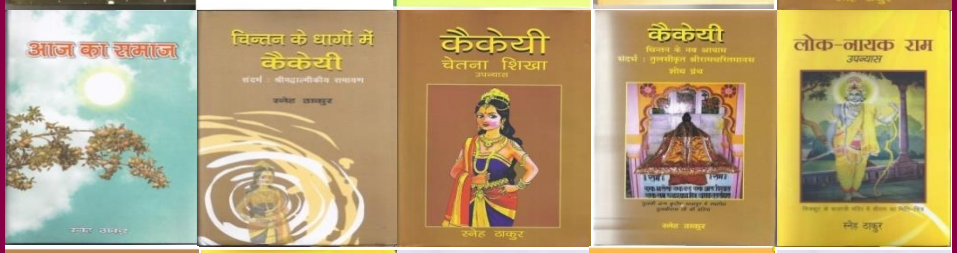

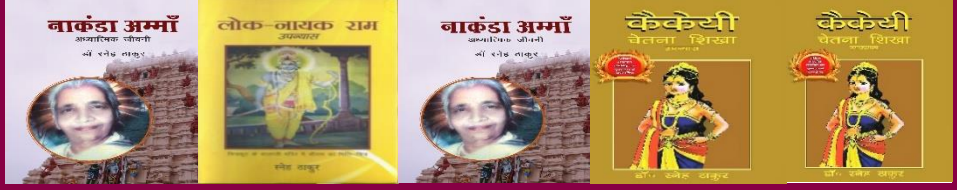

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य -	संदर्भ : अध्यात्मरामायण (शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम -	संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी -	संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	**(A collection of English poems)**
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४८५ बी., आसफ अली रोड, नई दिल्ली - ११०००२, भारत
Star Publishers' Distributors, 55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित